आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध-संग्रह 'अशोक के फूल' के उपजीव्य

डॉ० अंशुमाला मिश्रा

© डॉ० अंशुमाला मिश्रा

प्रकाशकः
डॉ० महेन्द्र शुक्ल शास्त्री
विरदोपुर, वाराणसी (उ० प्र०)

दूरभाष :
९४१५३४०८०३
९४५०९२५७५७
९४१५२७४६८५

मूल्य : १५० रुपये

मुद्रक
वसुन्धरा ग्राफिक्स, भदैनी-वाराणसी

Aacharya Hajari Prasad Dwivedi ke Nibhandha-Sangraha 'Aśoka ke phūla ke upajīvya'
by
Dr. Anshu Mala Mishra

समर्पण

प्रातः स्मरणीय

पूज्य स्व0 श्री त्रियुगी नारायण मिश्र

एवम्

आदरणीय स्व0 श्रीमती पन्नादेवी

के

श्रीचरणों में

हार्द एवं सादर समर्पित

अनुक्रमणिका

	शुभाशंसा	I
	स्वान्तःसुखाय	II-IV
प्रथम अध्याय	**आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	१-५०
	★ जीवनवृत्त	
	★ शास्त्रीय-व्यक्तित्व	
	★ 'ग्रन्थावली' दृशा आचार्य द्विवेदी के सम्पूर्ण साहित्य	
	★ द्विवेदी जी के निबन्ध साहित्य का संक्षिप्त परिचय	
	★ द्विवेदी जी के निबंध संग्रह 'अशोक के फूल' के निबंधों के सारांश	
द्वितीय अध्याय	**'उपजीव्य' शब्द की व्याख्या, परिभाषा एवं लक्षण**	५१-५४
तृतीय अध्याय	**द्विवेदी जी के विवेच्य निबंध-संग्रह के उपजीव्य**	५५-९२
	★ संस्कृत ग्रंथों के उपजीव्य	
	★ हिन्दी ग्रंथों से प्राप्त उपजीव्य	
	★ बंगला भाषा एवं साहित्य के उपजीव्य	
	★ बौद्ध ग्रंथों से प्राप्त उपजीव्य	
	★ स्वरचित उपजीव्य	
चतुर्थ अध्याय	**द्विवेदी जी के उपजीव्यों का वर्गीकृत स्वरूप**	९३-१०६
पंचम अध्याय	**अध्ययन की उपलब्धियाँ एवं उपसंहार**	१०७-११०

शुभाशंसा

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का रचनात्मक और विवेचनात्मक साहित्य जितना विशाल है उसकी नेपथ्य-भूमि उतनी ही विस्तीर्ण है। उनके साहित्य में भारतीय साहित्य और संस्कृति की प्राणधारा का ऐसा उन्मेष देखने को मिलता है जहाँ परम्परा आधुनिक दृष्टि का आलोक पाकर और भी दीप्त हो उठी है। उनकी प्रज्ञा ने संस्कृत पालि-प्राकृत-अपभ्रंश के प्राचीन क्लासिकीय साहित्य के साथ-साथ एक ओर हिंदी और बंगला के नये पुराने साहित्य का तो दूसरी ओर लोक साहित्य और जनपदीय संस्कृति का पंचामृत पान किया है। उन्हें कालिदास प्रिय हैं तो कबीर-सूर-तुलसी भी नितान्त आत्मीय हैं; उन्हें रवीन्द्रनाथ में जितना रस आता है, लोकसाहित्य में उससे कम नहीं आता; उन्हें आदिकालीन साहित्य की कथानक रूढ़ियों और कबीर की उलटबाँसियों में जितनी ज्ञान सामग्री मिलती है, लोककथाओं और जनश्रुतियों में उससे कम शोध सामग्री नहीं मिलती। उन्होंने इन सभी स्रोतों से रचना और विचार का जो मधु संचय किया उसका एक प्रमाण है उनके साहित्य में उद्धृत संस्कृत, बंगला आदि के छंद किसी रचना में उद्धृत होने वाली पंक्तियाँ उस रचना का सारभाग तो नहीं होती लेकिन उनसे रचनाकार के अध्ययन, ज्ञान, रुचि और मानसिक बनावट का तो पता चलता ही है। इस दृष्टि से किया गया किसी रचना का अध्ययन भी शोधकर्त्ता का प्रयोजन तो पूरा करता ही है। इस प्रबन्ध में अंशुमाला मिश्रा ने द्विवेदी जी के सुप्रसिद्ध निबन्ध संग्रह ''अशोक के फूल'' में आये उद्धृतांशों के आधार पर संग्रह के निबन्धों की उपजीव्य सामग्री का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है। आशा है कि इससे द्विवेदी जी के साहित्य का अध्ययन-अनुसंधान करनेवालों को शोध की एक नई दिशा और प्रेरणा मिलेगी। यह सुश्री अंशुमाला मिश्र का प्रयास है। मेरी शुभकामना है कि उनका श्रम सफल हो और उन्हें अध्ययन-अनुसंधान के कार्य में आगे बढ़ने के लिए नई प्रेरणा और आवेग प्रदान करे।

अवधेश प्रधान

दिनांक : २८-११- २००६

स्वान्तःसुखाय

भारतीय साहित्यिक परम्पराओं व प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन आज एक दुरुह कार्य प्रतीत होता है, परन्तु हमारे हिन्दी साहित्य के विद्वान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ऐसे किरणपुञ्ज हैं जिन्होंने हिन्दी साहित्य को अपने निबन्धों के माध्यम से अमूल्य योगदान दिया है। संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन व उनमें से वाक्यांशों को निकालकर उनको प्रसंग रूप में प्रस्तुत करने का कार्य द्विवेदी जी ने ही किया है। इनके निबन्ध मुख्यतः 'अशोक के फूल' संग्रह में आये हुए दृष्टांत स्वयं में शोध के विषय हैं। इनके साहित्य में आये हुए संदर्भों के उपजीव्य वेद, पुराण, शास्त्र, मीमांसा के अतिरिक्त पाश्चात्य एवं पौर्वात्य साहित्य से तो हैं ही, साथ ही इतिहास, पुरातत्व, उपनिषद् स्मृतियों से सम्बद्ध ग्रंथ व स्थान भी है। यद्यपि उनकी समस्त कृतियाँ देवभाषा के उचित उपजीव्यों का कोष हैं परन्तु उनके निबन्ध-विशेषतः संदर्भों से भरे पड़े हैं। जिनका मूल श्रोत प्राचीन वाङ्मय में दूर-दूर तक फैला (समाहित) है।

आचार्य द्विवेदी जी गोस्वामी तुलसीदास के पश्चात् सम्भवतः एक-मात्र साहित्यकार है, जिनका साहित्य संदर्भों की दृष्टि से बहुत धनी है। इनके सम्पूर्ण साहित्य में तुलसीदास की तरह नाना पुराण, निगमागम, समास तो है ही, **निगदितं क्वचिदन्यतः** भी है। उनके वाङ्मय में किन-किन संदर्भों का अवगुंठन कहाँ से किया गया है, कौन सा संदर्भ कहाँ से उठाया गया है और उन प्राचीन संदर्भों के साथ अपने प्रसंगो और वस्तुओं को द्विवेदी जी ने किस प्रयोजन की प्राप्ति के लिए जोड़ा है इसकी विवेचना अपने आप में रोचक भी है और ज्ञान के नूतन दिशा में उद्भावना करने वाली भी है।

'उपजीव्य शब्द का अर्थ है' लिखने के लिए विषय सामग्री देने वाला या जिससे मनुष्य सामग्री प्राप्त करे। तथा कोई स्रोत या प्रामाणिक ग्रंथ इनका प्रथमतः प्रयोग महाभारत में मिलता है, किन्तु द्विवेदी जी ने अपने प्रथम उपन्यास **''वाणभट्ट की आत्मकथा''** के प्रारम्भ में इसका उपयोग करते हुये, लिखा है- आत्मकथा प्रकाशित हो रही है, विचार था कि समाप्त होने के बाद इस कथा पर

एक विस्तृत आलोचना लिखी जाये। समय के अभाव में ऐसा हो नहीं सका। सहृदय पाठकों के लिए यह कार्य छोड़ दिया गया। वाणभट्ट और श्री हर्षदेव के ग्रंथ कथा के प्रधान उपजीव्य रहे हैं। इससे स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी की स्वेच्छा थी कि उनकी साहित्य के सन्दर्भों के उपजीव्यों की समीक्षा (गवेषणा) की जाय।

अतः इसी उद्देश्य पूर्ति के लिए मैने आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध संग्रह 'अशोक के फूल' के उपजीव्य शीर्षक विषय की शास्त्रीय मीमांसा की है। द्विवेदी जी के साहित्य पर यद्यपि अनेक समीक्षात्मक लेखन हुये हैं; परन्तु निबन्धों के संदर्भों की गवेषणा बहुत कम देखने को मिलती है। मुझे विश्वास है कि इस कार्य से जहाँ एक ओर आचार्य द्विवेदी के निबन्धों की संदर्भ ग्राह्यता पर प्रकाश पड़ेगा वहीं प्राचीन वाङ्मय के बहुत से नव्य नक्षत्र भी प्रकाश में आ सकेंगे।

इस लघु ग्रन्थ के प्रकाशन के अवसर पर अतीव हर्ष का अनुभव कर रही हूँ। परमपिता परमेश्वर एवं माता **श्रीमती सत्या शुक्ला**, पिता **डॉ0 महेन्द्र शुक्ल शास्त्री** के आशीर्वाद से यह कार्य सहजतया सम्पन्न हो सका है।

आदरणीय गुरुवर **प्रो. अवधेश प्रधान हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय** के प्रति नत हूँ जिन्होंने विद्यार्थी जीवन से ही लेखन को प्रोत्साहन दिया, साथ ही इस ग्रन्थ में अपनी 'शुभाशंसा' प्रदान कर इसकी गरिमा को वृद्धिङ्गत किया।

इसी क्रम में **डा. अनुराधा बनर्जी** अंग्रेजी विभाग; बसन्त कन्या महाविद्यालय वाराणसी के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के बंगला (रवीन्द्र की कविताओं) अंश को परीमार्जित एवं सन्दर्भित किया।

मेरे विद्यार्थी जीवन के गुरुवर **डॉ. मनमोहन शुक्ल** ने इस ग्रन्थ का आद्यन्त परीक्षण किया एवं वे इसकी पूर्णता में अत्यन्त सहायक बने रहे, उनके प्रति आभारी हूँ।

जिनके बिना मेरी कृतियाँ सम्भव ही नहीं ऐसे आदरणीय पतिदेव **डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र** ने समय समय पर जो प्रोत्साहन दिया वह अविस्मरणीय है।

बिना पारिवारिक जनों की प्रेरणा या योगदान के किसी भी कार्य की सम्पूर्ति असंभव है अतः मैं आभारी हूँ आप सभी बन्धुओं एवं बच्चों के प्रति- **श्री दुर्गेश नारायण मिश्र, श्री सुरेन्द्र मिश्र, डॉ. विवेक पाण्डेय, डॉ. माधवी पाण्डेय, श्री अवनीश शुक्ल, श्रीमती विजयलक्ष्मी, श्री महेश्वर शुक्ल, भानु, रानी, अनुश्री, अमृताश एवं अन्वीक्षा।**

विशषाधर्मण्य मेरी छोटी बहन **डॉ. मनीषा शुक्ला, प्रोजेक्ट फेलो, महिला अध्ययन एवं विकास केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी**, जिसने आद्योपान्त भाषा-परिष्कार, भाषा- संशोधन, प्रारूप- निर्माण, सन्दर्भ- संशोधन तथा सम्पादन कार्य किया। संक्षेप में, यह कृति मेरी नहीं अपितु मनीषा की ही कही जा सकती है क्योंकि मैंने अपने इस लघुशोधकार्य के ग्रन्थ- रूप की कल्पना भी नहीं की थी जो आज मूर्त हो विद्वज्जन के समक्ष है। इस सारस्वत महनीय सहयोग के लिए डॉ. मनीषा को, इस अपनी विदुषी छोटी बहन को शत-शत आशीः।

अन्त में पग-पग पर जिनसे स्नेह मिला उस राही को धन्यवाद!!!

स्खलिति मानव प्रवृत्ति है अतः यत्रकुत्रचित् जो मुझ अल्पमति की अनवधानता दृष्टिगत हो उसे विद्वज्जनक्षमा करेंगे।

संवत २०६३ माघ शुक्लपक्ष
वसंत पंञ्चमी पर्व

डॉ॰ अंशुमाला मिश्रा

अंशुमाला मिश्रा

९/७ बी. ४
लिडिल रोड, जार्ज टाउन,
इलाहाबाद, उ0 प्र0, (भारत)

प्रथम अध्याय

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

- ★ जीवनवृत्त
- ★ शास्त्रीय-व्यक्तित्व
- ★ 'ग्रन्थावली' दृशा आचार्य द्विवेदी जी के सम्पूर्ण साहित्य द्विवेदी जी के निबन्ध साहित्य का संक्षिप्त परिचय
- ★ द्विवेदी जी के निबन्ध संग्रह 'अशोक के फूल' के निबन्धों के सारांश

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

★ जीवन वृत्त

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म श्रावण ११सं० १९६४ (सन् १९०७) को बलिया जिले में आरत छपरा नामक गाँव में हुआ था। आरत दूबे इनके परदादा का नाम था। उन्हीं की महत्ता दर्शाने के लिए उस गाँव का नाम आरत दूबे का छपरा पड़ा। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। द्विवेदी जी पर ब्राह्मणत्व के संस्कार जन्म और कर्म दोनों ही प्रकार से पड़े हैं। इनके पूर्वज ज्योतिष विद्या के लिए विख्यात रहे हैं। इनके पिता पं० अनमोल दूबे अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध पण्डित थे। इनकी माता भी बहमनौली के विख्यात पं० देव नारायण जी की पुत्री थीं। सचमुच श्रीमती ज्येतिकली की कोंख से ऐसी ज्योति उत्पन्न हुई जो हिन्दी साहित्य के लिए तो जाज्वल्यमान रत्न है। विश्व साहित्य भी ऐसे रत्नों का सदैव सम्मान करता रहेगा। द्विवेदी जी का आचार्य होना तो इनकी पैतृक धरोहर ही समझा जाना चाहिए। समय और अनुकूलताओं के कारण वह जन्म सिद्ध आचार्यत्व आज हिन्दी के लिए वरदान बना हुआ है। इनका बचपन का नाम बैजनाथ द्विवेदी था।

आपकी आरम्भिक शिक्षा अनेक स्थलों पर हुई है। प्रारम्भ में इन्होंने वसियापुर के मिडिल स्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी। उन दिनों ये अपने चाचा पं० बाँके दूबे के अनुशासन में रहा करते थे। विधिवत् निर्देशन मिलने के कारण इन्होंने संवत् १९७८ में मिडिल परीक्षा पास की। तत्पश्चात् संस्कृत अध्ययनार्थ काशी आये। वहाँ उन्होंने एक वर्ष संस्कृत की प्रवेशिका परीक्षा

पास की, तदनन्तर सं० १९८० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आपका प्रवेश हुआ। सं० १९८४ में आपने प्रवेश परीक्षा पास की। प्रारम्भ से ही आपको संस्कृत के अध्ययन में रुचि रही। ज्योतिष की ओर उनकी अभिरुचि यद्यपि कम ही रही, फिर भी ज्योतिष में आपने आचार्य की परीक्षा सन् १९३० में प्रथम श्रेणी में पास की। इनका विवाह २० वर्ष की अवस्था में सं० १९८४ में सम्पन्न हुआ। इनकी पत्नी का नाम श्रीमती भगवती देवी था। इनके ७ पुत्र एवं पुत्रियाँ हैं। बी०ए० की परीक्षा पास करने के लिए इन्होंने बहुत प्रयत्न किया फिर भी आँख में उठी पीड़ा के कारण उसे पूरा नहीं कर सके। अन्ततः उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा समाप्त कर दी। ८ नवम्बर सन् १९३० में आपने गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर के शांति निकेतन में अध्यापक के रुप में प्रवेश किया। यह शांति निकेतन और द्विवेदी जी दोनों के लिए सम्मान की बात है। सन् १९३० से सन् १९५० तक ये यहीं हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद का कार्य-भार सम्हाले। इसी बीच में इन्हें शोध कार्य सम्पन्न करने की प्रेरणा मिली और अपनी अध्ययनशील प्रवृत्ति के कारण उसमें भी निरत रहे। अभिनवभारती ग्रन्थमाला का सम्पादन, कलकत्ता में सन् १९४०-४६ में किया। विश्वभारती पत्रिका का सम्पादन, सन् १९४१-४७ में किया। शांति निकेतन के पश्चात् द्विवेदी जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के विभागाध्यक्ष बने। आपने कुछ समय तक पंजाब विश्वविद्यालय में भी हिन्दी के विभागाध्यक्ष पद पर सम्मानपूर्वक काम किया। आप साहित्य अकादमी, दिल्ली की साधारण सभा और प्रबन्ध समिति के सदस्य भी रहे।

द्विवेदी जी को अपने विद्यार्थी जीवन में समय-समय पर कविवर मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त तथा पं० बनारसीदास चतुर्वेदी से साहित्य निर्माण की कार्यशील प्रेरणा मिलती रही। शांति निकेतन में अध्यापकत्व के कार्यकाल में आपको क्षितिजमोहन लेन तथा पण्डित विधुशेखर शास्त्री से भी कम प्रेरणा नहीं मिली। इन विद्वान आचार्यों ने द्विवेदी जी की प्रतिभा को निखारने में बहुत सहयोग दिया। पं० बनारसी दास चतुर्वेदी इनके अग्रज के रुप में भूमिका निभाते रहे।

आपके अन्दर ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा के साथ ही उदारता, सरलता और

मननशीलता थी। अपनी विशेष अध्ययनशील प्रवृत्ति के कारण आपका अध्ययन क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया। हिन्दी के साथ ही आप अन्य कई विषयों के अच्छे ज्ञाता थे। यद्यपि आपने आधुनिक साहित्यिकारों की प्रवृत्ति के अनुरुप अपनी विद्वत्ता का प्रचार कभी नहीं किया, फिर भी आपकी विद्वत्ता सीमा अथवा दायरे में नहीं बाँधी जा सकती है। सन् १९५०-५३ में आप ''विश्वभारती'' विश्वविद्यालय की एक्जीक्यूटिव काउन्सिल के सदस्य रहे। आप काशी नगरी प्रगारिणी सभा के अध्यक्ष सन् १९५२-५३ में रहे साथ ही आप नगरी प्रचारिणी सभा काशी के हस्तलेखों की खोज १९५२ में तथा साहित्य अकादमी से प्रकाशित नेशनल विब्लियोग्राफी (१९५४) के निरीक्षक रहे। आप राजभाषा आयोग के राष्ट्रपति मनोनीत सदस्य १९५५ ई० में हुये एवं सन् १९५७ में आपको राष्ट्रपति द्वारा ''पद्मभूषण'' उपाधि से सम्मानित किया गया। आपको सन् १९६२ में पश्चिम वंग साहित्य अकादमी द्वारा टैगोर पुरस्कार भी मिला। सन् १९६७ के बाद आप पुनः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में, कुछ समय तक रेक्टर के पद पर भी रहे। अपने जीवन में आपने कृत्रिमता को थोड़ा भी स्थान नहीं लेने दिया। राजनैतिक अथवा साहित्यिक गुटबन्दियों से आप सदैव दूर रहा करते थे। आपका साहित्य जगत में सम्मान निरन्तर बढ़ता ही गया एवं ''सूर साहित्य'' पर आपको इन्दौर में साहित्य समिति ने स्वर्णपदक भी प्रदान किया था। आपको ''कबीर'' नामक रचना पर मंगला प्रसाद पारितोषक भी प्रदान किया गया। साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी इस साहित्य जगत को तज कर १९ मई १९७९ को स्वर्गलोक चले गये।

★ शास्त्रीय व्यक्तित्व

साहित्य की विधाओं में साहित्यकार के व्यक्तित्व की छाप आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है। व्यक्तित्व की छाप, लेखक की शैली चिन्तन विवेचन, ज्ञान प्रकाशन, आस्था, आदर्श, भाव-मुग्धता आदि के रूप में प्रकाशित होती है। इस तरह आत्मा का प्रकाशन एवं आत्मतत्व की अभिव्यक्ति साहित्य में अनिवार्यतः होती ही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का

व्यक्तित्व उनके साहित्य में गहन अध्ययन और निज के प्रकाशन के रूप में सामने आया है। उनका व्यक्तित्व बड़ा ही महिमा मण्डित है, उनमें पाण्डित्य के साथ सहज सरलता, अध्यापन के साथ भोलापन, चिन्तन के साथ विचारों की स्पष्टता और बात कहने की कुशलता गम्भीर विवेचन के साथ शैली की प्रसादात्मकता का सामंजस्य, विचार और भावुकता का समानुपातिक मिश्रण प्राप्त होता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में उनका व्यक्तित्व इस प्रकार परिलक्षित होता है।

डॉ० द्विवेदी जी के साहित्य में आत्म प्रकाशन की प्रचुरता है । इसी प्रकार उनके बहुत से साहित्य आत्मपरक और वैयक्तिक हो गये हैं। साहित्य की धारा में बहते-बहते आप अपने विषय में ही बहने लगते हैं। आपकी अभिव्यक्तियाँ तब इस रूप में सामने आती है।

''पढ़ता लिखता हूँ । यही पेशा है। सौ दुनिया के बारे में पोथियों के सहारे ही थोड़ा बहुत मानता हूँ।''[1]

अपने साहित्य के माध्यम से द्विवेदी जी पाठकों के साथ प्रत्यक्ष, सीधा और ममतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर उसे अपने साथ लेकर चलते हैं। कभी वे अपने पाठकों को यह कहकर धीरज बंधाते हैं कि **''मैं पाठकों का समय व्यर्थ में नष्ट न करूगाँ। विश्वास रखें।''** कभी उनसे बाते करने लगते हैं। **''आम को क्यों घसीटते हो बाबा।''** कभी-कभी वे पाठक की इस प्रकार की सम्पत्ति लेकर उसे साथ ले चलते है। शायद मेरी भाँति आप भी इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि साहित्य विभक्त समुदाय को समृद्ध बनाता है।

साहित्य में प्रतिपाद्य वस्तु का वर्णन करते-करते सहसा वे अपने राग-विरागों की अभिव्यक्ति भी करने लगते हैं। इस प्रकार निज को साकार करने का प्रयत्न भी द्विवेदी जी के साहित्य में इतना अधिक मिलता है कि उन साहित्य की विधाओं को व्यक्ति प्रधान कहना अधिक उपयुक्त लगता है।

''एक बार जी क्षुब्ध हो जाता है। कूटनीतिज्ञों के मुँह से सत्य की

१. बसन्त आ गया पृ०-१६

प्रशंसा सुनकर मन में ग्लानि होती है, सेनापतियों के मुँह से अहिंसा की प्रशंसा सुनता हूँ तो झुंझलाहट पैदा होती है और साम्राज्यवादियों के मुँह से तो गाँधी का नाम सुनते घृणा आती है। जानता हूँ गाँधी के अनुयायी के मन में ऐसे विचार नहीं आने चाहिए पर लाचार हूँ। मैं अपने को सब समय रोक नहीं पाता । यद्यपि मुँह से अब तक किसी के प्रति अशिष्ट आचरण नहीं हुआ है लेकिन मन में इन विचारों का आना ही क्या कम बुरा है इन अन्तः विकारों का कारण क्या है ?''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में उनकी वैयक्तिक आस्थाओं और आदर्शों की अभिव्यक्ति निम्नलिखित चार रूपों में हुई है।

(क) प्राचीन संस्कृति और प्राचीन इतिहास के प्रति निष्ठा

(ख) गाँधीवाद की अभिव्यक्ति

(ग) मानवतावाद की अभिव्यक्ति

(घ) आशावाद की अभिव्यक्ति

डॉ० द्विवेदी जी के मन में भारतीय संस्कृति और प्राचीन इतिहास के प्रति इतनी अधिक निष्ठा है कि वे इसे प्रकट करने के लिए अवसर निकाल ही लेते हैं। **''अशोक के फूल'', ''भारतीय फलित ज्योतिष'', ''वाणभट्ट की आत्मकथा'' ''भारतीय संस्कृति की देन''** आदि में यह निष्ठा स्पष्ट है। वे कभी तो भावुक हृदय और स्निग्ध नयनों से भारतीय संस्कृति का अतीत ज्योतिपुंज देखकर गदगद होते हैं तो कभी उन चित्रों को पाठकों की पुतलियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं।

विचारों से द्विवेदी जी गाँधीवादी है। इसे वे अनेक स्थानों पर स्वीकारते हैं। अतएव गाँधीवादी विचारधारा का उनकी रचनाओं में स्पष्ट प्रभाव है।

आचार्य द्विवेदी का साहित्य सिद्धान्त मानवतावादी है। इसकी अभिव्यक्ति स्पष्टतः उनके निबन्धों में हुई है। वे मनुष्य को ही साहित्य का लक्ष्य मानते हैं- वे कहते हैं कि **मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता,**

परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को पर दुःख कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।''[१]

प्राचीन के प्रति पूर्णरूपेण आस्थावान होते हुये भी द्विवेदी जी विकास नियम को स्वीकारते हैं। आप निबन्धों में नवीन के प्रति भी आशावादी हैं, **''साहित्य के नये मूल्य'' के विषय में वे कहते हैं- ''चित्रगत उन्मुक्तता बड़ी चीज है क्योंकि वह बड़ी सम्भावना से भरी होती है, उसका स्वागत होना चाहिए।''**[२]

डॉ० द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में ममता और भावुकता का विशेष स्थान है। उनकी भावुकता उनके विचार प्रधान निबन्धों को भी तरल, मधुर और सुकुमार बना देती है। कहीं-कहीं तो उनकी ममता की मंदाकिनी गम्भीरतम चिन्तन भूमितल को सींचकर भावात्मकता की हरियाली उगा देती है। **''अशोक के फूल'' ''बसन्त आ गया'', आम फिर बौरा गये''** आदि निबन्धों में उनकी भावुकता स्पष्ट है। **''भुलाया गया है अशोक। मेरा मन उमड़-उमड़ कर भारतीय रस साधना के पिछले हजार वर्षों पर वनरस जाना चाहता है। क्या वह मनोहर पुष्प भुलाने की चीज थी। सहृदयता क्या लुप्त हो गयी थी। कविता क्या सो गयी थी। मेरा मन यह सब मानने को तैयार नहीं है।**[३]

डॉ० द्विवेदी जी साहित्य और नाना शास्त्रों तथा विज्ञानों के प्रकाण्ड पण्डित हैं। उनका अध्ययन भी बड़ा विस्तृत है। उनके इस पाण्डित्य और गहन अध्ययन की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में अनेक रूपों में प्राप्त होती है।

(क) उद्धरण की बहुलता

(ख) साहित्य समीक्षा में विविध शास्त्रो का उपयोग

---

१. मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है
२. साहित्य के नये मूल्य
३. अशोक के फूल

(ग) तत्सम शब्दावली का प्रयोग

(घ) शब्दों की व्युत्पत्ति देने की प्रवृत्ति

डॉ० द्विवेदी जी की रचनाओं में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, लोक भाषाओं से उद्धरण प्राप्त है। यह उनके पाण्डित्य और गहन अध्ययन का परिचायक है यथा-

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरि,।

विस्मयो मे महान् राजन् रोमहर्षश्च जायते।[१]

द्विवेदी जी विविध शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसीलिए उन्होंने आलोचना के क्षेत्र में साहसपूर्ण कदम उठाकर इतिहास, धर्म, विज्ञान, पुराण-विज्ञान, प्राच्य विद्या, जीव विज्ञान, मनोविज्ञान, प्रजनन शास्त्र, नृतत्व शास्त्र, पुरातत्व विज्ञान, नीतिशास्त्र आदि का भरपूर उपयोग किया है।

सांख्यशास्त्रियों के मत से पुरुष अनेक हैं और प्रकृति अपने मायाजाल में बाँधती है। पुरुष विशुद्ध चेतन स्वरुप उदासीन और ज्ञाता है। जब तक उसे अपने इस स्वरुप का ज्ञान नहीं हो जाता तभी तक वह उसके जाल में फँसा रहता है। यह दृश्यमान जगत वस्तुतः प्रकृति का ही विकास है।[२]

आचार्य द्विवेदी जी संस्कृत के पण्डित है अतः उनके साहित्य में संस्कृत के तत्सम शब्दावली ही नहीं सामासिक पदों, विभक्तियों और उद्धरणों का प्रचुरता में प्रयोग हुआ है। जैसे कौलित्य, अहमहयिका, पदे-पदे, चिद्विषयक, गगनोपमास्था, अध्याकृति, भावाभाव विनिमुक्त, येन-केन प्रकारेण, प्रभा स्वर, तुल्यभूता, नगण्यात् नगण्यतर।''

डॉ० द्विवेदी जी में अपने पाण्डित्य के अनुरूप शब्दों की व्युत्पत्ति देने की प्रवृत्ति भी है।

''कौन जाने, गौ धूम (गेहूँ) की लता किसी दिन सचमुच गायों को लगने वाले मच्छरों को भगाने के लिए धुआँ पैदा करने में काम आती हो।''

डॉ० द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में **पाण्डित्य के साथ सहज, सरलता**

१. गीता अध्याय १८ श्लोक संख्या ७३

२. भारतीय साहित्य की प्राणशक्ति

और भोलापन भी मिलता है। प्रसन्नता तो उनका लक्षण हैं उनके निबन्धों में इसी सरलता भोलेपन और स्वच्छ प्रसन्नता की अभिव्यक्ति मिलती है । परसा भी **मैंने बसन्त पंचमी के दिन आम मुकुल देखे हैं। पर बड़ी जल्दी से मुरझा गयी। उसी आम को दुबारा फूलना पड़ा । जरा रुक के ही फूलते। कौन ऐसी यात्रा बिगड़ी जाती है।**[१]

डॉ० द्विवेदी जी के साहित्य में उनके चिन्तन की भी अमिट छाप है। वे विचारक हैं और उन्होंने विचारों को निबन्धों में वाणी दी है। उनके चिन्तन में गम्भीरता रहती है।

श्री द्विवेदी जी के व्यक्तित्व में स्पष्टता और स्वच्छता का गुण मिलता है। इसी के अनुरूप उनके रचनाओं में विचारों की स्पष्टता, अभिव्यक्ति की स्वच्छता और बात कहने की सफाई मिलती है। तर्क, कार्यकरण, निष्कर्ष की पहुँच उसमें बहस के ढंग पर नहीं होती। विवाद और विरोध बचाव तो स्पष्ट प्रकट होता है। द्विवेदी जी की अभिव्यक्ति की विशेषता है- विवाद-रहित बिना विरोध अपनी बात कह देना। स्पष्टता और स्वच्छता से उनकी अभिव्यक्ति सर्वत्र सजीव बनी पड़ी है।

आचार्य द्विवेदी जी उच्चकोटि के इतिहासकार भी हैं। वास्तव में हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी देन है-हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि की ऐतिहासिक व्याख्या। यह उनकी समीक्षा का मूलतत्व है, इसलिए उनके निबन्धों में **गवेषणात्मक प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है।''** आम फिर बौरा गये'' निबन्ध में ऐतिहासिक व्याख्या सम्बन्धी गवेषात्मक प्रवृत्ति देखी जा सकती है, जबकि निबन्ध मूलतः भावात्मक और व्यक्तिपरक है तथा उसका गवेषणा से दूर ''वृक्ष'' है।

''कामशास्त्र में सुवसंतक उत्सव की चर्चा आती है। ''सरस्वती कंठाभरण में लिखा है कि सुवसन्तक बसन्तावतार के दिन को कहते हैं। बसन्तावतार अर्थात् जिस दिन बसन्त अवतरित होती है। मेरा अनुमान है बसन्त पंचमी ही वह बसन्तावतार की तिथि है। ''मात्स्यसूत्र'' और ''हरिभक्ति विलास'' आदि ग्रन्थों में इसी दिन को बसन्त का प्रादुर्भाव दिवस माना गया है।[२]

१. आम फिर बौरा गये

२. आम फिर बौरा गये

डॉ० द्विवेदी जी स्वभाव से विनोद प्रिय हैं। उनकी इस प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति साहित्य की विधाओं में हास्य व्यंग्य के रूप में हुई है। गम्भीर वातावरण के बीच भी द्विवेदी जी व्यंग्य की गुदगुदी उत्पन्न करते चलते हैं। इससे रचना में रस बढ़ता है। पाण्डित्य का भार भी पाठक के मस्तिष्क को नहीं ढोना पड़ता। व्यंग्य कसे हुये विचारों में कैसे पाठक के मन के लिए बहुत ही सुन्दर आसरा है। ''शिरीष के फूल'' ''आम फिर बौरा गये'' ''समालोचक की डाक'' ''साहित्य का नया कदम'' आदि निबन्धों में व्यंग्य के सरस छींटे मिलेंगे। ''क्या आपने मेरी रचना पढ़ी है'' सम्पूर्ण रूप में व्यंग्यात्मक निबन्ध है।

★ग्रन्थावली आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के सम्पूर्ण साहित्य•

प्रथम खण्ड-

ग्रन्थावली के इस प्रथम खण्ड में द्विवेदी जी के दो उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा और चारुचन्द्र लेख प्रस्तुत हैं। बाणभट्ट की आत्मकथा, का कवि कोरा भावुक कवि नहीं वरन् कर्म निरत और संघर्षशील जीवन योद्धा है। उसके लिए ''शरीर भार नहीं, मिट्टी का ढेला नहीं बल्कि उससे बड़ा है और उसके मन में आर्यावर्त के उद्धार का निमित्त बनने की तीव्र बेचैनी है।

चारुचन्द्र लेख में बारहवीं, तेरहवीं शताब्दी के उस काल का सर्जनात्मक पुनःनिर्माण करने का प्रयत्न है, जब सारा देश आन्तरिक कलह से जर्जर और तान्त्रिक साधना के मोह में पथभ्रष्ट होकर समस्याओं का समाधान पारे और अभ्रक के खरल संयोग में खोज रहा था। द्विवेदी जी ने इसके विरह ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया के त्रिकोणात्मक सामंजस्य तथा जनसाधारण की हिस्सेदारी पर बल दिया है और उनकी इस स्थापना में अनायास ही आधुनिक युग मुखर हो उठता है।

द्वितीय खण्ड-

ग्रन्थावली के दूसरे खण्ड में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के दो उपन्यासों

•११ खण्डों में ग्रन्थावली के रूप में

पुनर्नवा और अनामदास का पोथा समाहित है। चौथी शताब्दी की घटनाओं पर आधारित पुनर्नवा में आचार्य द्विवेदी के द्वारा लोकापवादों से दिग्भ्रान्त कुछ ऐसे चरित्रों की कहानी प्रस्तुत की गई है जो वस्तु-स्थिति की कारण परम्परा को न समझ कर समाज से ही नहीं अपने आपसे पलायन करते हैं और कर्तव्याकर्तव्य का बोध उन्हें नहीं रहता। सत्य की तह में जाकर जब वे उन अपवादों और स्तुतियों के भ्रमजाल से मुक्त होते हैं, तभी अपने वास्तविक स्वरुप का परिचय उन्हें मिलता है और नवीन शक्ति प्राप्त कर वे नये सिरे से जीवन संग्राम में प्रवृत्त होते हैं। पुनर्नवा ऐसे हीनचरित्र व्यक्तियों की कहानी भी है जो युग-युग तक समाज की लांछना सहते आये हैं किन्तु शोभा और शालीनता की कोई किरण जिनके अन्तर में छिपी रहती है, एक दिन वही किरण ज्योतिपुंज बनकर न केवल उनके अपने बल्कि दूसरे के जीवन को भी आलोकित कर देती है।

'अनामदास का पोथा' जिजीविषा की कहानी है। ''जिजीविषा है तो जीवन रहेगा जीवन रहेगा तो अनन्त संभावनाये भी रहेंगी। कुछ बच्चे हैं, किसी की टाँग सूख गयी है, किसी का पेट फूल गया है, किसी की आँख सूज गयी है- ये जी जायँ तो इनमें बड़े-बड़े ज्ञानी और उद्यमी बनने की सम्भावना है'' तापस कुमार उन्हीं सम्भावनाओं को उजागर करने के लिए व्याकुल हैं और उसके लिए वे विरचित का नहीं, प्रवृत्ति का मार्ग अपनाते हैं।

तृतीय खण्ड-

हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' संकलित किया गया है। हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य का आदिकाल; इस खण्ड में साहित्येतिहास सम्बन्धी ये तीन कृतियाँ शामिल हैं, जो अपने समय के मूल्यांकन विवेचन एवं परिणामों की दृष्टि से एक दूसरे की पूरक हैं।

चतुर्थ खण्ड-

ग्रन्थावली के इस खण्ड में संग्रहीत सूर साहित्य अैर कबीर द्विवेदी जी के क्रान्तिकारी आलोचना ग्रन्थ हैं। सूर-साहित्य में जहाँ उन्होंने कुछ पाश्चात्य

विद्वानों के इस मत का पहली बार दृढ़ता के साथ खण्डन किया है कि सूरदास आदि भक्त कवियों पर इसाई मिशनरियों का प्रभाव था, वहीं कबीर को मात्र समाज सुधारक से कवि के आसन पर प्रतिष्ठित करने के लिए भी उन्हें कम झाड़-झंखाड़ों को नहीं साफ करना पड़ा। दोनों ग्रन्थों की सर्वोपरि विशेषता यह है कि आचार्य द्विवेदी की रस संग्रहिणी दृष्टि इन महाकवियों के काव्य विवेचन में अग्रसर हुई है।

पंचम खण्ड-

मध्यकाल को उसके सही परिप्रेक्ष्य में समझने समझाने के लिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जो साधना की थी वह अभूतपूर्व है। स्वयं द्विवेदी जी के शब्द उधार लेकर कहे तो ''असाध्य साधन है यों तो उनका अधिकांश लेखन मध्यकाल पर ही केन्द्रित है लेकिन ग्रन्थावली के इस पांचवे खण्ड में जो तीन पुस्तकें संग्रहीत हैं, उनका विषय मध्यकाल का स्वरूप विवेचन ही है। ये पुस्तकें है- मध्यकालीन बोध का स्वरूप सहज साधना और मध्यकालीन धर्म साधना। इन पुस्तकों का फलक इतना व्यापक है कि इन्हें पढ़ने के बाद साहित्य और इतिहास के विद्यार्थी के लिए इस विषय पर और कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता।

छठां खण्ड-

ग्रन्थावली के प्रस्तुत खण्ड में आचार्य द्विवेदी की दो पुस्तकें नाथसम्प्रदाय तथा सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त, 'संदेश' रासक की भूमिका के रूप में लिया गया है। उनका एक लम्बा शोधपरक निबन्ध, अपभ्रंश भाषा और साहित्य-विषयक है एवं कुछ शुद्ध निबन्ध भी इसी खण्ड में दिये गये हैं।

द्विवेदी जी के साहित्यिक चिन्तन का मूलाधार मनुष्य है- अपने सारे अभावों, हास एवं रुदन के साथ जीता जागता समूचा मनुष्य उनकी दृष्टि से कहीं भी ओझल नहीं हुआ है। नाथ सम्प्रदाय में उन्होंने गुरु गोरखनाथ के लोक सम्पृक्त स्वरूप का उद्घाटन किया है।

सातवां खण्ड-

इस खण्ड में हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य शास्त्रीय और सौन्दर्य

शास्त्रीय चिन्तन में समाहित है। लालित्य तत्व पर उनके कुछ निबंध आलोचना त्रैमासिक में प्रकाशित हुये थे। जो ग्रन्थावली के माध्यम से पहली बार समन्वित् रूप में पाठकों समक्ष प्रस्तुत हैं। साहित्य का मर्म और साहित्य का साथी भी इसी खण्ड में सम्मिलित है। साथ में है नाट्य शास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक की विस्तृत शोधपरक भूमिका तथा प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद।

आठवाँ खण्ड-

ग्रन्थावली का आठवाँ खण्ड आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के दो प्रेरणाश्रोत महाकवियों- कालिदास तथा रविन्द्र को समर्पित है। एक ने केवल अपने साहित्य के माध्यम से उन्हें हिल्लोलित-प्रणोदित किया और दूसरे ने साहित्य के साथ ही साथ अपने नैकट्य से भी उनके भीतर अव्यवहित प्राणधारा का संचार किया। यहाँ द्विवेदी जी की तीन पुस्तकें प्रस्तुत हैं- **मेघदूत : एक पुरानी कहानी, कालिदास की लालित्य योजना और मृत्युंजय रविन्द्री।**

मेघदूत : एक पुरानी कहानी के माध्यम से भारतीय वाङ्मय की एक सुरस एवं लोकप्रिय कृति को नूतन, मूल्यवान और किंचित मौलिक परिधान में पुनः प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की गई है। कालिदास की लालित्य योजना में पाण्डित्य, शास्त्रज्ञान, चिन्तन एवं मनन् है, यह मूल्यांकन की विवेचनी मनीषा का नवीन शोध है। पूर्व और पश्चिम की प्राक्तन उपलब्धियों का बुद्धिसंगत समंजन है और सर्जनात्मक प्रतिभा का विषयनिष्ठ उन्मेष है। अत्यन्त उदात्त क्षणों में कवि के अन्तर से फूट पड़ने वाले विचारों से लेकर साधारण से साधारण अवसरों में जग उठने वाली सुकुमार भावुकता और सामान्य से सामान्य अवसरों पर बिखर पड़ने वाले हास्य और निष्कंटक व्यंग्य की फुरेरियों के उल्लेख से व्यक्तित्व सम्बन्धी प्रायः सभी निबन्धों में सहज रसमयता आ गयी है।

नवाँ खण्ड-

ग्रन्थावली के नौवें खण्ड में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध संगृहीत हैं। प्रस्तुत खण्ड में उनके ललित और शोधपरक निबन्ध हैं।

अपने निबन्धों खासकर ललित निबन्धों में द्विवेदी जी आद्यन्त कवि हैं। पाठक भावोद्रेक और अप्रस्तुत के भावोचित व्यंजक प्रयोग, सजीव विम्बाव्यक्ता, भाव प्रवणता के कारण सारस्वत यात्रा का आनन्द प्राप्त करता है और उस ज्ञान कोष की उपलब्धि द्विवेदी जी सरीखे सहृदय के अनुभवित मणि माणियों से परिपूर्ण है।

दसवाँ खण्ड-

दसवें खण्ड में संग्रहित इन निबन्धों में आचार्य द्विवेदी ने मुख्य रूप से समसामयिक हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा की स्थिति पर विचार किया है। चाहे वे किसी नवीन प्रकाशित कृति का मूल्यांकन कर रहे हों अथवा राजभाषा के प्रश्न पर विचार कर रहे हों या हिन्दी भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए साहित्यकार, प्रकाशक तथा सरकार का कर्त्तव्य निर्धारण कर रहे हों- हर कहीं उनका क्रान्तिकारी चिन्तन ओजस्वी भाषा में व्यक्त हुआ है।

ग्यारहवाँ खण्ड-

ग्रन्थावली के ग्यारहवें खण्ड में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की विविध विषयक अधिकांश अप्रकाशित सामग्री संग्रहित है। इसमें उनकी मौलिक कविताएँ है रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं के अनुवाद हैं फलित ज्योतिष पर लिखी हुई एक पुस्तक है, पुरातन प्रबन्ध संग्रह नामक संस्कृत के एक प्राचीन आख्यायिक कोष का हिन्दी अनुवाद है, और है काव्यशास्त्र पर लिखी हुई एक लघु पुस्तिका, जो लेखन क्रम की दृष्टि से द्विवेदी जी का सबसे पहला प्रयास है। उनकी सबसे पहली प्रकाशित पुस्तक सूर साहित्य भी उसके बाद ही लिखी गयी। उनकी पुस्तकें लिखी जाती और प्रकाशित होती रहीं किन्तु यह लघु पुस्तिका शान्ति निकेतन में कागजों के किसी स्तूप के नीचे दबी रहकर आज तक अप्रकाशित ही रह गयी थी। यह पुस्तिका यद्यपि उन्होंने केवल चौबीस-पच्चीस वर्ष की आयु में लिखी थी, फिरभी इसमें उनका मौलिक चिन्तन प्रतिफलित हुआ है और काव्यशास्त्र पर प्राचीन आचार्यों के मतों का विवेचन करते हुए उन्होंने कई स्थानों पर अपना स्वतंत्र मत स्थापित किया है। सबसे अन्त में द्विवेदी जी के पत्रों का

संकलन है जिनमें से अधिकांश में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिये गये हैं। इन पत्रों में द्विवेदी जी के कर्ममय जीवन और एक महान लक्ष्य के लिए समर्पण भाव का जो रूप सामने आता है; वह किसी भी पाठक के लिए एक उपलब्धि सिद्ध होगा।

★द्विवेदी जी के निबन्ध साहित्य का संक्षिप्त परिचय

हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग नौ के अन्तर्गत ललित और शोधपरक निबन्धों का संग्रह किया गया है इस खण्ड में कुल नवासी निबंध संकलित हैं। इन सभी निबन्धों का क्रमशः नाम के साथ निम्नांकित रूप से परिचय प्रस्तुत है।

(१) **अशोक के फूल-**

द्विवेदी जी का यह बहुचर्चित ललित निबन्ध है जिसमें अशोक के फूल की उत्पत्ति से लेकर आज तक मिलने वाले इसके महत्त्व का उल्लेख है।

(२) **शिरीष के फूल -**

यह लेख भी द्विवेदी जी के प्रकृति चित्रण का मनोरम रूप है। शिरीष के पेड़ एवं फूल को लेकर लिखा गया है।

(३) **कुटज-**

पर्वत शोभा में कुटज की शोभा को देखते हुये लेखक का यह शोधपरक ललित निबन्ध है।

(४) **देवदारु-**

फलों, वृक्षों के क्रम में ही देवदारु भी द्विवेदी जी का ललित निबंध है।

(५) **आम फिर बौरा गया है-**

ललित निबन्धों की शृंखला में द्विवेदी जी का यह लेख समृद्ध शोध लेख है।

(६) बसन्त आ गया है-

अत्यन्त भावात्मक शैली में लिखा गया यह अत्यन्त छोटा सा लेख है।

(७) आत्मदान का सन्देश वाहक बसन्त-

बसन्त ऋतु के सम्बन्ध में लिखा गया अनुभूतिपरक यह लेख उत्सवों का काल बसन्त क्या है, धरती सूर्य का ही एक भाग है, धरती सूर्य से मिलने के लिए आकुल तथा आत्मदान में सार्थकता उपशीर्षक में विभाजित एक सुन्दर लेख है।

(८) प्राचीन भारत में मदनोत्सव-

यह लेख द्विवेदी जी का छोटा किन्तु समृद्ध शोध लेख है।

(९) जीवेम शरदः शतम्-

वेद की इस ऋचा को लेकर उपनिषदों, महाभारत, भागवत् तथा अन्य विभिन्न साहित्यकारों की रचनाओं में आये हुये जीवन विषयक अनेक प्रसंगों के सन्दर्भों पर यह लेख आधारित है।

(१०) वर्षा : घनपति से घनश्याम तक-

शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुये भी द्विवेदी जी का यह लेख सन्दर्भों की दृष्टि से अत्यन्त बोझिल है।

(११) वरसो भी -

साप्ताहिक हिन्दुस्तान के १९ जुलाई १९७३ के अंक में प्रकाशित यह छोटा सा लेख साहित्यिक एवं राजनीतिक क्षेत्र के लोगों के प्रति एक व्यंग्य चित्र है।

(१२) सौन्दर्य सृष्टि में प्रकृति की सहायता-

यह लेख द्विवेदी जी के प्रकृति चिन्तन और उसके प्रतिभावात्मक लगाव का सुन्दर चित्र है।

(१३) आलोक पर्व की ज्योतिर्मयी देवी-

मारकण्डेय पुराण की आद्यशक्ति महालक्ष्मी तथा ज्ञान इच्छा और सक्रिय रूप में स्थित त्रिपुरेश्वरी अथवा त्रिपुरा को एक ही शक्ति के

रूप में मानते हुये दीपावली के पुण्य पर्व के लिए इनका प्रतिपादन इस लेख में किया गया है।

(१४) अंधकार से जूझना है-

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के परिप्रेक्ष्य में, दीपावली पर्व की महत्ता को प्रकट करने के लिए लिखा गया यह एक छोटा लेख है।

(१५) दीपावली सामाजिक मंगलेच्छा का प्रतिभा पर्व-

यह छोटा सा लेख भी पूर्व लेखों के क्रम में ही दीपावली की पावन परम्परा को लेकर लिखा गया है।

(१६) भारत में द्यूत-क्रीड़ा -

धर्मयुग के नवम्बर १९७४ के अंक में मुद्रित यह छोटा सा लेख इस देश में द्यूत-क्रीड़ा की प्राचीन परम्परा को लेकर लिखा गया है।

(१७) नया वर्ष आ गया-

यह लेख द्विवेदी जी का अत्यन्त समृद्ध शोध लेख है।

(१८) मेरी जन्म भूमि-

यह लेख द्विवेदी जी ने अपने ही जन्म-भूमि वाले गाँव ''दूबे का छपरा'' नामक गाँव के सम्बन्ध में लिखा है-

(१९) घर जोड़ने की माया-

यह लेख कबीरदास के सम्बन्ध में लेखक द्वारा लिखी जाने वाली पुस्तक की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखा गया है।

(२०) नाखून क्यों बढ़ते हैं-

एक अत्यन्त सामान्य विषय नाखून के बढ़ने को लेकर लिखा गया यह लेख द्विवेदी जी के उदात्त चिन्तन का परिणाम है।

(२१) जिन्दगी और मौत के दस्तावेज-

यक्ष द्वारा युधिष्ठिर से पूछे गये आश्चर्य विषयक प्रश्न को दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करते हुये मृत्यु के सत्य तथा जीवन की जीजिविषा को लेकर लिखा गया है।

(२२) व्योमकेश शास्त्री उर्फ हजारी प्रसाद द्विवेदी-

यह लेख निबन्ध कम, संस्मरण अधिक लगता है।

(२३) ब्रह्माण्ड का विस्तार-

यह निबन्ध द्विवेदी जी ने भारतवर्ष में प्राचीन ज्योतिष परम्परा को लेकर लिखा है।

(२४) केतु दर्शन-

नवम्बर १२, १९१७ को हुये कथित केतु दर्शन को आधार मानकर तथा ज्योतिष की दुनियाँ में उसे ऐतिहासिक रात कहकर लेखक ने ज्योतिष शास्त्र के अनेक ग्रन्थों के आधार पर धूमकेतु के उद्‌भव तथा विविध रूपों का सुन्दर विवेचन इस लेख में किया है।

(२५) प्राचीन ज्योतिष-

यह निबन्ध भारतवर्ष में प्राचीन ज्योतिष तथा उसके स्वरूप को लेकर लिखा गया है।

(२६) ज्योतिर्विज्ञान-

यह लेख भारतीय ज्योतिष शास्त्र के महत्वपूर्ण बिन्दुओं के शोध पर आधारित है।

(२७) भारतीय फलित ज्योतिष-

इस निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने भारतीय गणित ज्योतिष के अतिरिक्त सम्पूर्ण समाज पर अपना प्रभाव डालने वाली फलित ज्योतिष के विकास पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है।

(२८) हिमालय-

(१) रामायण और महाभारत को अपनी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अक्षय भंडार मानने का वर्णन है।

(२९) हिमालय-

(२) पूर्व लेख की भाँति इस निबन्ध में भी हिमालय के महत्व को प्रदर्शित किया गया है।

(३०) वैशाली-

यह निबन्ध ऐसा लगता है कि द्विवेदी जी का वैशाली में दिया गया भाषण है।

(३१) भगवान महाकाल का कुण्ठ नृत्य-

इस निबन्ध में द्विवेदी जी ने स्वतंत्रता संग्राम में कूदे लोगों की भावनाओं का वर्णन किया है।

(३२) ठाकुर जी की बटोर-

द्विवेदी जी का यह लेख गाँव के ठाकुरवारी और मस्जिद की तुलना करते हुये भावात्मक श्रेणी में लिखा गया है।

(३३) भारत की ऐक्य साधना साहित्य के क्षेत्र में-

इस निबन्ध में द्विवेदी जी ने वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त रामायण और महाभारत को भारतीय मनीषा में सर्वोच्च उपजीव्य माना है।

(३४) भारतीय संस्कृति में हिन्दी का प्राचीन साहित्य-

भारतीय संस्कृति में हिन्दी के प्राचीन साहित्य का अन्वेषण करते हुये लेखक ने इस लम्बे निबन्ध को पूर्णतः शोध लेख बना दिया है।

(३५) सभ्यता और संस्कृति-

इस निबन्ध में द्विवेदी ने प्रथमतः सभ्यता और संस्कृति शब्दों की व्युत्पत्ति- परक व्याख्या प्रस्तुत की है।

(३६) भारतीय संस्कृति की देन-

ग्रन्थावली में संग्रहित यह निबन्ध बिहार प्रान्तीय संस्कृति सम्मेलन, मन्दार भागलपुर में दिया गया लेखक का भाषण है।

(३७) भारतीय संस्कृति का स्वरूप-

यह निबन्ध भी द्विवेदी जी का शोधपरक निबन्ध है।

(३८) संस्कृत और साहित्य-

वैदिक युग से लेकर ईशा की उन्नीसवीं शताब्दी तक के सांस्कृतिक विकास का वर्णन है।

(३९) पूर्वी एशिया के तीर्थ यात्रियों का स्वागत-

इसमें लेखक ने वाराणसी में आये तीर्थयात्रियों के स्वागत में अपने भावोद्गार व्यक्त किये हैं।

(४०) स्वागत-

प्राच्य संस्कृति परिषद्, सारनाथ के चतुर्थ अधिवेशन १९७० में आध्यात्मिक पद पर किया गया भाषण है।

(४१) कला का प्रयोजन-

यह काव्य शास्त्रीय निबन्ध है।

(४२) कवि एक बार सम्हाल-

यह निबन्ध लेखक के कल्पना प्रवण भावुकता का अनूठा उदाहरण है।

(४३) बोलो काव्य के मर्मज्ञ-

हिन्दी काव्य में नयी कविता विधा के उद्भव काल के समय लिखी गयी एक कविता है।

(४४) पुरानी पोथियाँ-

भारतवर्ष में लिखी जाने वाली एवं प्राचीन काल से अब तक के ग्रन्थों की चर्चा इस लेख में की गयी है।

(४५) पुस्तक का महत्व-

अत्यन्त छोटे इस लेख में द्विवेदी जी ने पुस्तक के महत्व को किस प्रकार निर्धारित किया जाय- इसी विचार को प्रकट किया है।

(४६) भीष्म को क्षमा नहीं किया गया-

साप्ताहिक हिन्दुस्तान १९ जनवरी, १९७८ के अंक में प्रकाशित यह लेख द्विवेदी जी की व्यंजनात्मक अनुभूतियों का सुन्दर उदाहरण है।

(४७) सर्वकाल नमस्य महामानव-

नवभारत टाइम्स वार्षिकांक १९७५ के अंक में प्रकाशित यह

अत्यन्त छोटा सा लेख भगवान महावीर और उनके उपदेशों को लेकर लिखा गया है।

(४८) आत्मजयी, भगवान महावीर-

यह लेख भगवान महावीर और उनके चरित्र पर लिखा गया है।

(४९) मध्यम मार्ग-

यह लेख महात्मा गौतम बुद्ध के आर्य अष्टांगिक मार्ग की अवधारणा को लेकर लिखा गया है।

(५०) धर्म चक्र-

यह निबन्ध महात्मा बुद्ध के जीवनादर्शों पर आधारित है।

(५१) शाक्त मार्ग का लक्ष्य अद्वैत-

यह एक भाषण है जिसे यहाँ पर निबन्ध के रूप में संकलित किया गया है।

(५२) संविवूपा महामाया-

चिन्तन प्रधान इस लेख में द्विवेदी जी ने तर्क और साहित्य को आगमों में शक्ति की संविवूपा स्वरूप के साथ जोड़कर विभिन्न पारिभाषिक शब्दों की व्युत्पत्ति पर व्याख्या की है।

(५३) तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि-

यह आलोक पर्व से संकलित हास निबन्ध है। गोपीनाथ कविराज के ग्रन्थ तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि पर आधारित है।

(५४) भारत की समन्वय साधना धर्म और दर्शन के क्षेत्र में-

आलोक पर्व में संकलन से संग्रहित यह लेख द्विवेदी जी के भारतीय धर्म और दर्शन विषयक गहन अनुशीलन की अभिव्यक्ति है।

(५५) संस्कृतियों का संगम-

कल्पलता संकलन से संग्रहित यह लेख भी भारतीय मनीषा में विभिन्न संस्कृतियों के समन्वयवादी दृष्टिकोण को लेकर

लिखा गया है।

(५६) भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या-

धर्म के समान संस्कृति को अविरोधी वस्तु बताते हुये द्विवेदी जी ने इस लेख में हमारी सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान पर सुन्दर विचार प्रस्तुत किया है।

(५७) हिन्दू संस्कृति के अध्ययन के उपादान-

विचार और वितर्क संकलन से संग्रहित यह लेख वस्तुतः द्विवेदी जी के गहन शोधदृष्टि का ज्वलन्त उदाहरण है।

(५८) समाज संस्करण पर विचार-

कई अनुच्छेदों में विभक्त तथा विचार और वितर्क संकलन से संग्रहित यह लेख भी सन्दर्भों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है।

(५९) धार्मिक विप्लव और शास्त्र-

कुटज संकलन से संग्रहित यह लेख वस्तुतः लेखक के मन में टूटती आस्थाओं एवं धार्मिक मान्यताओं के रहते रूप की पीड़ा की अभिव्यक्ति है।

(६०) धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायाम्-

कल्पलता संकलन से संग्रहित यह लेख लेखक द्वारा भारतीय धर्म साधन के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक लेख है।

(६१) भाव और भगवान-

इस लेख में द्विवेदी जी ने भाव और भगवान के सम्बन्धों को स्पष्ट करते हुये विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से भगवान के चिन्तनमय रूप, ऐश्वर्यमय रूप तथा प्रेममय रूप को विवेचित किया है।

(६२) सर्वे : पुंसाम परोधर्मः

शास्त्र अभिनय के इस अंश शीर्षक लेख में परम धर्म को विभिन्न उदाहरण के साथ विवेच्य बनाया गया है, इस विवेचना को प्राचीन

युग से लेकर अब तक के एतद् विषयक विभिन्न विषयों को इसका उपजीव्य रखा गया है।

(६३) राष्ट्रीय एकता के प्रतीक शिव-

इस शीर्षक में लेखक ने वैदिक युग से आये हुये शिव अथवा रूद्र के रूपों को विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से विवेचित करके उन्हें सांस्कृतिक और भावात्मक एकता का प्रतीक बताया है।

(६४) शव साधना-

२६ जून १९४४ को साप्ताहिक आज के अंक में प्रकाशित यह लेख तांत्रिक साधना पर व्यक्त किये गये विचारों का मूर्त रूप है। शव साधना के विभिन्न उपशीर्षक को देते हुए इसकी अच्छाइयों और असावधानी की दुर्घटनाओं के प्रति संकेत किया गया है।

(६५) आधुनिकता के सन्दर्भ में उपासना का स्वरूप-

इस लेख में लेखक ने बढ़ती बौद्धिक प्रवृत्ति तथा भावना पक्ष के प्रति होते हुए हास के रूपों को आधुनिक सन्दर्भ में जोड़ते हुये नैतिकता को चेतन धर्म कहा है और जड़ तत्वों से मिश्रित नैतिकता को प्रमुख बताया है।

(६६) हमारी महती परम्परा-

इस लेख में चरित्र बल में अग्रणी समझे जाने वाले भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति, विकसित सभ्यता तथा चरित्र बल की महत्ता को प्रकट किया गया है।

(६७) परम्परा और आधुनिकता-

इस लेख में लेखक ने परम्परा और आधुनिकता के मध्य सामंजस्य को खोजने का प्रयास किया है तथा आधुनिकता में अपने आपको कोई मूल्य न मानकर मनुष्य के अनुसार भावों द्वारा प्राप्त महनीय मूल्यों को नये संदर्भों में देखने की दृष्टि माना है।

(६८) गुरू शिष्य परम्परा-

पूर्वजों की श्रेष्ठ धरोहर के रूप में गुरू-शिष्य परम्परा को भी मानते हुए लेखक ने इन सम्बन्धों की विविध आयामी विवेचना इस लेख में प्रस्तुत की है साथ ही अधिकार और अधिकारी के रूपों का भी उल्लेख किया है।

(६९) चाणक्य या कौटिल्य-

चाणक्य के सम्बन्ध में कोषकारों के मतों से लेकर पुराण, उपनिषद्, साहित्य आख्यायिका इत्यादि में चाणक्य के सन्दर्भों में आये हुए प्रसंगों का उल्लेख करते हुए इनकी प्रखर बुद्धि के कौशल को प्रतिस्थापित किया गया है।

(७०) ज्योतिर्विद आर्यभट्ट -

भारतीय ज्योतिष संसार में जाज्वल्यमान नाम आर्यभट्ट तथा उनकी कृतियों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए उनके सम्बन्ध में कहे गये अनेक दृष्टान्तों में उनकी महत्ता प्रतिपादित की गयी है।

(७१) तिलक का गीता दर्शन-

इस लेख में लोकमान्य तिलक को शीर्षस्थ शोधकर्ता तथा विद्वान् मनीषी मानकर लेखक ने उनके गीता दर्शन के विभिन्न पक्षों को प्रस्तुत किया है।

(७२) मानव धर्म-

इस धर्म में द्विवेदी जी ने धर्म की सर्वकालिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुये उसे युगीन सन्दर्भों में अभिनिर्धारित करने की बात इस लेख में की है।

(७३) धार्मिक एवं सच्चरित्र नारी कुटुम्ब की शोभा है-

भारतीय परिवार में स्त्री को केन्द्र मानते हुए उसके सच्चरित्र और मर्यादित रहने पर परिवार दृढ़ और सुखी बनता है; यह बात प्रतिपादित की है।

(७४) राजाराममोहन राय-

अत्यन्त छोटे इस लेख में द्विवेदी जी ने राजाराममोहन राय की समाज सेवा, कर्मठता, देश के गौरव के प्रति समर्पित भावना तथा सामाजिक बुराइयों के प्रति उनके क्रान्तिकारी चिन्तन का उल्लेख किया है।

(७५) वन्दे मातरम्-

यह लेख बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा 'मेरा दुर्गोत्सव' नामक लेख के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है तथा इस लेख में विद्यमान बन्देमातरम् गीत के भाव को विवेचित किया गया है।

(७६) बंकिमचन्द्र-

शांति निकेतन में आये हुए कुछ नये मित्रों को बंकिमचन्द्र चटर्जी तथा उनके कृतित्व का परिचय देते हुए लेखक ने इस लेखक की कहानी कही तथा उनकी औपन्यासिक प्रेरणाओं को भी इसमें रूपायित किया है।

(७७) पुण्य पर्व-

यह लेख स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में लिखा गया है, जिसमें देश की स्वतंत्रता के स्वत्व की रक्षा की बात कही गयी है।

(७८) वह चला गया-

यह लेख महात्मा गाँधी के देहावसान के पश्चात् उन्हीं के लिए लिखा गया एक भाव चित्र है। इसमें उनके जीवन के विभिन्न संयम, नियम एवं आदर्शों का भी उल्लेख किया गया है।

(७९) महात्मा के महाप्रयाण के बाद-

पूर्व लेखक क्रम में ही यह लेख में भी महात्मा गाँधी के लिए एक श्रद्धाञ्जलि पुष्प है। इसमें भी लेखक ने चरित्रबल, नैतिकता, अहिंसा, सत्य, मानव सेवा, इत्यादि उदात्त गुणों वाले महात्मा गाँधी के विभिन्न सिद्धान्तों और आदर्शों को स्थापित किया गया है।

(८०) डरो मत-

मध्य-प्रदेश सन्देश पत्र में २९ नवम्बर १९५८ को प्रकाशित इस लेख में द्विवेदी जी ने भय दूर करने के लिए तत्वों के चिन्तन की आवश्यकता पर बल दिया है तथा यह प्रतिपादित किया गया है कि तत्व चिन्तन से मनुष्य, भय को जीत सकता है इसलिए तत्व चिन्तन मनुष्य का सहज धर्म है इसके लिए लेख में विभिन्न ग्रन्थों का दृष्टान्त भी लेखक ने प्रस्तुत किया है।

(८१) ततः किम्-

इस लेख को विभिन्न उपशीर्षकों में विभाजित करके लेखक ने मानवतावादी दृष्टिकोण, वुद्धि वैभव की समस्या, अंतरात्मा की भूख, नाल्पे सुखमस्ति तथा बुद्धि तत्व को कैसे सन्तुष्ट किया जाय, आदि विषयों की सुन्दर विवेचना की है।

(८२) गतिशील चिन्तन-

यह लेख एक संस्मरण लगता है। इसमें भारतीय समाज और उसके गतिशील चिन्तन के विभिन्न बिन्दुओं का रेखांकन किया गया है। लेख के अन्त में लेखक की भावुक शैली का रूप तथा अतीत के प्रति लगाव भी व्यक्त हुआ है।

(८३) आन्तरिक शुचिता भी आवश्यक है-

इस लेख में भी द्विवेदी जी ने अपने देश के संस्कारों की चर्चा करते हुए गाँधी जी की आन्तरिक शुचिता को उनके नेतृत्व की महान उपलब्धि बताकर उससे प्रेरणा लेने की बात कही है।

(८४) आस्था का अभाव-

१९ अप्रैल १९६७ को लिखे गये इस लेख में आधुनिक समाज, युवा पीढ़ी तथा विशेषतः शिक्षण संस्थाओं में आने वाले युवाओं के भीतर आस्था के अभाव तथा उसे दूर करने के उपाय के सम्बन्ध में उल्लेख है तथा साथ ही अनुकरणीय आचरण की बात कही गयी है।

(८५) प्रायश्चित् की घड़ी-

यह लेख द्विवेदी जी का चिन्तन प्रधान लेख है। इसके अन्तर्गत लेखक ने भारत वर्ष में प्रचलित विभिन्न संकीर्ण मान्यताओं, रूढ़ियों, परम्पराओं तथा सामाजिक मत वैभिन्य को समाप्त करके नये युग मूल्यों के अनुसार उनमें एक नया परिवर्तन लाकर सामाजिक प्रायश्चित् की बात कही है। इसके लिए उन्होंने विभिन्न ग्रन्थों को उपजीव्य बनाया है।

(८६) क्या निराश हुआ जाय-

४ अक्टूबर १९७४ को लिखा गया यह चिन्तन प्रधान लेख भी सामाजिक दुर्व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करता है जिसमें विभिन्न संस्मरणों का उल्लेख करते हुए लेखक ने इसके परिवर्तन के लिए उपाय भी सुझाये हैं।

(८७) मनुष्य का भविष्य-

१ जून १९७८ का यह लेख कुछ चिकित्सकों को सम्बोधित किया गया भाषण सा लगता है। इसमें बढ़ती हुई वैज्ञानिक प्रगति के विकासात्मक तथा विनाशात्मक दोनों रूपों का विवेचन है।

(८८) पण्डितों की पंचायत-

काशी के पंचाङ्ग निर्माताओं की पंचायत में उपस्थित होने पर लेखक द्वारा शास्त्र के विभिन्न मतों का उल्लेख किया गया है।

(८९) जज का दिमाग खाली है-

इस संस्मरणात्मक निबन्ध में द्विवेदी जी ने भारत के अतीत स्वर्णिम युग को चित्रित करते हुए आधुनिक युग की दयनीयता पर दुःख प्रकट किया है। प्रतीकात्मक एवं भावात्मक शैली का यह छोटा सा लेख अत्यन्त प्रभावकारी है।

★ खण्ड १० में संकलित निबन्धों की संक्षिप्त रूपरेखा इस प्रकार है-

(१) मनुष्य की सर्वोत्तम कृति साहित्य-

कल्पलता संग्रह से संकलित इस निबंध में अपनी प्रतिभा कल्पना तथा स्वास्थ्य चिन्तन का उपयोग करते हुए द्विवेदी जी ने मनुष्य की सर्वोत्तम कृति के रूप में साहित्य को बड़े सुन्दर ढंग से रेखांकित किया है।

(२) मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है-

यह भाषण करांची हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्यिक परिषद् के अध्यक्ष पद से दिया गया है। भाषण ही यहाँ लेख के रूप में संकलित है। इस लेख में साहित्य को मानव और मानवता की दृष्टि से देखने का स्वस्थ्य चिन्तन किया गया है।

(३) साहित्य की साधना-

साहित्य में आधुनिक युग के बदलते हुए मानदण्डों का उल्लेख करते हुए लेखक ने नवीन साहित्यकारों को ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में रस संग्रह करने हेतु प्रेरित किया है तथा ज्ञान राशि के सार संग्रह के बिना साधना को उन्होंने अधूरी कहा है।

(४) साहित्य का प्रयोजन : लोक कल्याण-

विभिन्न साहित्य शास्त्रियों द्वारा निर्धारित साहित्य के प्रयोजन की चर्चा करते हुए लेखक ने इसके व्यापक पक्ष को आकाशवाणी हेतु लिखी गयी इस वार्ता में प्रस्तुत किया है।

(५) साहित्य का नया कदम-

एक काल्पनिक वार्तालाप और साहित्यिक नामधारी पत्रों के माध्यम से विभिन्न साहित्य के नये रूपों को व्यक्त कराने का यह अभिनव प्रयोग लेखक द्वारा किया गया है। इस लेख द्वारा नये युग में नयी-

नयी परिस्थितियों में व्यक्त किये जाने वाले साहित्य के विभिन्न रूपों और धाराओं को विवेचन का प्रतिपाद्य बनाया गया है।

(६) साहित्य के नये मूल्य-

इस लेख में द्विवेदी जी ने स्वच्छन्दतावाद तथा रोमांटिक साहित्य के साथ, साहित्यिक क्षेत्र में विदेशों में हुए साहित्यिक परिवर्तन तथा भारतीय चिन्तनधारी की तुलना करते हुए लेखक ने पाश्चात्य चिन्तन के प्रभाव को भारतीय चिन्तन धारा के विकास में बाधा माना है।

(७) आधुनिक साहित्य नयी मान्यताएँ-

३ अक्टूबर १९५१ को आकाशवाणी इलाहाबाद से प्रसारित यह वार्ता यहाँ लेख के रूप में संकलित है। इसमें साहित्य की नयी मान्यताओं को जीवन की नयी मान्यताओं से लेखक ने अविच्छिन्न माना है।

(८) साहित्य में मौलिकता का प्रश्न-

इस लेख में लेखक ने मौखिक शब्द की व्याख्या करते हुए साहित्य का सहज होना मौलिकता का सहज होना माना है तथा लेखक के उसी व्यक्तित्व को सच्ची मौलिकता का अधिकारी माना है; एवं कहा कि साहित्यिक व्यक्तित्व जितना उज्वल और शक्तिशाली होगा साहित्य की मौलिकता उतनी उज्वल और दीप्त होगी।

(९) साहित्य में व्यक्ति और समाप्ति-

इस लेख में द्विवेदी जी ने ज्ञान के दो पक्षों तथ्य और सत्य को विवेचित करते हुए व्यक्ति और समूह के विभिन्न सम्बन्धों को रूपायित किया है। इस लेख को उन्होंने भाषा, सामाजिक सम्बन्धों का प्रतीक, प्रतिभा का प्रादुर्भाव, शब्द और अर्थ, आवेग और कम्पन तथा सामाजिक मंगल का विधायक साहित्य जैसे उपशीर्षकों में विभाजित किया है।

(१०) साहित्य की सम्प्रेषकीयता-

इस लेख में द्विवेदी जी ने सामाजिक समस्याओं, विसंगतियों को दूर करने के लिए साहित्यिक सम्प्रेषकीयता को एक सफल माध्यम माना है।

(११) साहित्यकारों का दायित्व-

यह लेख करांची हिन्दी साहित्य के सम्मेलन की साहित्यिक परिषद् के अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण है। इस भाषण में द्विवेदी जी ने सामाजिक परिवर्तन और जीवन मूल्यों के संरक्षण के लिए साहित्यकारों के विभिन्न दायित्वों का विवेचन करते हुए इनकी विभिन्न भूमिकाओं का उल्लेख किया है।

(१२) साहित्य का इतिहास-

लेखक ने इस निबन्ध में साहित्य को जीवन का सत्य मानते हुए इसके इतिहास को भी जीवन का इतिहास माना है। लेखक की धारणा है कि इतिहास लिखते समय जो भी उद्धरण या दृष्टान्त दिये जाँय उनके सन्दर्भों के प्रमाणित श्रोतों को भी अवश्य दिया जाय।

(१३) आलोचना का स्वतंत्र मान-

यह निबन्ध एक पत्र के लिए लिखा गया था जिसमें आलोचना का स्वतंत्र मानदण्ड क्या है; यह बात विवेचित है।

(१४) सावधानी की आवश्यकता-

यह निबन्ध भी साहित्यकारों के लिए लिखी गयी लेखक की मौलिक रचना है। तत् युगीन नये साहित्यकार अथवा समीक्षकों को कथित किसी न किसी वाद में उलझाने की अपेक्षा आपने मौलिक विचार प्रस्तुत करने की प्रेरणा देने वाले लेख में तरुण साहित्यकारों से ऐसी साहित्य सृष्टि करने का अनुरोध किया है।

(१५) आपने मेरी रचना पढ़ी-

द्विवेदी जी का यह लेख तत्युगीन महत्वाकांक्षी कुछ लोगों के प्रति व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति है। जिसमें कुछ लेखक अपने साहित्यिक अभिमान में अपनी रचना को पढ़ने का प्रश्न उठा बैठे थे।

(१६) समालोचक की डाक-

पर्व लेख की भाँति ही यह लेख भी कुछ रचनाओं पर लिखी गयी संस्मरणात्मक समालोचना है, जिसमें ''अंचल'' जी की पुस्तक 'मधूलिका मंदार', भगवतीचरण वर्मा की रचना 'प्रेम संगीत', देवराज के प्रणयगीत 'नगेन्द्र की बनवाला', उपेन्द्रनाथ ''अश्क'' की 'प्रात प्रदीप', आरती प्रसाद की रचना 'कलापी', होमवती देवी की रचना 'अर्धा' आदि प्रभूति रचनाओं का सुन्दर विवेचन है।

(१७) काव्य कला-

इस निबन्ध के अन्तर्गत विभिन्न कलाओं का उल्लेख करते हुए तथा कथा स्थान, भिन्न-भिन्न कला विषयक प्रसंगों के दृष्टान्त और सन्दर्भों को प्रस्तुत किया गया है।

(१८) समीक्षा के सन्तुलन का प्रश्न-

समालोचना के क्षेत्र में समालोचक की दृष्टि किस प्रकार संतुलित रखी जा सकती है। इसी बात को इस निबन्ध के अन्तर्गत निरूपित किया गया है।

(१९) हिन्दी उपन्यास के यथार्थवाद का आतंक-

यह लेख द्विवेदी जी ने होने या न होने के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने के लिए लिखा है।

(२०) कविता का भविष्य-

काशी के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के किसी गोष्ठी विशेष के संस्मरण के आधार पर हिन्दी कवियों एवं उनकी कविताओं के सम्बन्ध में यह लेख लिखा गया है।

(२१) चार हिन्दी कवि-

यह भी द्विवेदी जी का एक समीक्षात्मक निबन्ध है। इसमें उन्होंने वर्तमान हिन्दी कविता के लिए कल्पना चिन्तन और अनुभूति के साथ विवृत्ति को महत्वपूर्ण बिन्दुओं में सम्मिलित किया है।

(२२) महिलाओं की लिखी कहानियाँ-

यह लेख महिला कहानीकारों की लेखन विषय मनोवृत्तियों के व्याज से स्त्री और पुरुष के अन्त संबोध का सुन्दर चित्रण है।

(२३) संस्कृत का साहित्य-

यह निबन्ध लेखक ने संस्कृत साहित्य की गहराइयों तथा उसकी मौलिक उपलब्धियों को लेकर लिखा है।

(२४) संस्कृत की कवि प्रसिद्धियाँ-

इस निबन्ध में लेखक ने संस्कृत के अनेक कवि प्रसिद्धियों को सोदाहरण विवेचित किया है।

(२५) संस्कृत साहित्य में पक्षी वर्णन-

इस निबन्ध में लेखक ने संस्कृत साहित्य में प्राचीनकाल से लेकर आये हुए पक्षी वर्णन के विविध रूपों को लेखनबद्ध किया है।

(२६) विश्वभाषा हिन्दी-

इस लेख में द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भाषा के रूप में उसके गौरव स्थापना की चेष्टा की है।

(२७) हिन्दी और अन्य भाषाओं का सम्बन्ध-

यह निबन्ध भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग के अधिवेशन में पठित लेख है। जिसका पूर्वार्द्ध विचार प्रवाह से और उत्तरार्द्ध विचार और वितर्क से लेकर यहाँ संकलित किया गया है।

(२८) भारतीय लोकतंत्र और संस्कृति लोकतंत्र की भाषा-

यह निबन्ध स्वतंत्र भारत के व्यावहारिक भाषा सर्वमान्य संस्कृत को समृद्ध करके देश के तेज को शक्तिशाली बनाने की प्रेरणा हेतु लिखा गया है।

(२९) भाषा सर्वेक्षण-

यह निबन्ध शोधपरक एवं तथ्यात्मक है जिसमें भाषा सर्वेक्षण के कार्य स्वरूप तथा उपलब्धियों का आगमन है।

(३०) हिन्दी में शोध का प्रश्न-

यह निबन्ध द्विवेदी जी का हिन्दी में शोधकार्य एवं उसकी स्थिति, स्वरूप तथा उसकी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में लिखा गया पूर्णतः मौलिक निबन्ध है।

(३१) आर्थिकवाद-

यह निबन्ध बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् के सप्तम वार्षिकोत्सव समारोह के सभापति पद से दिया गया अभिभाषण है।

(३२) सहज भाषा का प्रश्न-

अनेक उद्धरणों से युक्त इस लेख में द्विवेदी जी ने सहज भाषा के प्रश्न पर विचार किया है और यह बताया है कि सहज भाषा किसे कहते हैं और उसका स्वरूप क्या होता है?

(३३) नयी समस्यायें-

अनेक अनुच्छेदों में विभक्त यह लेख विश्व भारतीय 'पत्रिका',१९४५ में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में लेखक ने हिन्दी साहित्यकारों के समक्ष उठने वाली विभिन्न समस्याओं का उल्लेख किया है।

(३४) फिर से सोचने की आवश्यकता है-

काम निकालना बुद्धिमानी हो या मान के लिए मर मिटना मनुष्यत्व की निशानी, इस विषय को लेकर लिखा गया लेख है।

(३५) हम क्या करें-

अपने प्रिय उदीयमान भाषा के सम्मान भाव को बढ़ाने के लिए हमें क्या करना चाहिए? इसी चिन्तन के आधार पर यह लेख लिखा गया है।

(३६) हिन्दी का वर्तमान और भविष्य-

यह निबन्ध भी भारतीय हिन्दी परिषद् के नागपुर के अधिवेशन में अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण है।

(३७) सन् २००० में हिन्दी साहित्य-

एक तत्वान्वेषी की भाँति तीक्ष्ण समीक्षा और अनुभव दृष्टि के द्वारा

द्विवेदी जी ने यह लेख हिन्दी साहित्य की विभिन्न सम्भावनाओं को लेकर लिखा है।

(३८) मुंशी प्रेमचन्द-

यह छोटा सा लेख मुंशी प्रेमचन्द के जीवन, व्यक्तित्व और उनके कृतित्व की संक्षिप्त झाँकी प्रस्तुत करने हेतु लिखा गया है, जिसमें लेखक की प्रेमचन्द के सम्बन्ध में बनी हुई धारणा का भी चित्र देखने को मिल जाता है।

(३९) निराला केवल छन्द थे-

यह लेख द्विवेदी जी ने निराला जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने की दृष्टि से लिखा है तथा आदि कवि के प्रथम छन्द के साथ तुलना करते हुए उनकी काव्य गति और व्यक्तित्व को एकाकार बनाने वाले अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है।

(४०) निराला जी-

अत्यन्त संक्षिप्त यह लेख निराला जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के लिए लिखा गया है।

(४१) सुमित्रानन्दन पंत-

साहित्यकारों के सम्बन्ध में लिखे गये लेखों के क्रम में यह लेख लेखनी का सफल प्रयास है।

(४२) नयी चेतना का महान नायक चला गया-

यह लेख भी सुमित्रानन्दन पंत के देहावसान पर श्रद्धाञ्जलि स्वरूप लिखा गया है तथा 'आलोचना' पत्रिका के अक्टूबर, दिसम्बर १९७७ के अंक में प्रकाशित भी हो चुकी है।

(४३) दिनकर जी अमर हैं-

२० सितम्बर १९७५ को लिखा गया यह लेख भी दिनकर जी के ऐतिहासिक जीवन की समाप्ति पर व्यक्त शोकोद्गार है।

(४४) कथाकार रेणु का विलक्षण वैशिष्ट्य-

फणीश्वरनाथ रेणु के असामायिक देहावसान पर लिखे गये इस लेख में उनकी रचनाओं- मैला आँचल, धरती, परीकथा की सुन्दर विवेचना की गयी है।

(४५) पंजाब की देन वैदिक साहित्य-

यह निबन्ध १९६७ में आकाशवाणी जालंधर से प्रसारित वार्ता है। इसमें लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि वैदिक साहित्य के रूप में हमें जो कुछ प्राप्त हो सका है उसका मूल उत्स पंजाब ही है।

(४६) पंजाब की देन हिन्दी साहित्य-

इस लेख में द्विवेदी जी ने हिन्दी के प्राचीन रूप को सजाने, सँवारने और विकसित करने में पंजाब के योगदान का विशेष उल्लेख किया है।

(४७) हिन्दी की समृद्धि-

यह लेख उत्तर-प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग का अध्यक्षीय भाषण है। इसमें लेखक ने हिन्दी की समृद्धि के लिए विभिन्न लोगों के मत मतान्तरों को स्वीकार करते हुए मैत्री भाव के साथ एक मंच पर सम्मिलित होना कल्याणकारी बताया है।

(४८) साहित्यिक संस्थाएँ क्या कर सकती हैं-

यह लेख द्विवेदी जी ने यात्रावृत्त के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने नागरी प्रचारणी सभा द्वारा हिन्दी विकास और उत्थान के लिए किये गये कुछ कार्यों की प्रशंसा करते हुए अन्य साहित्य संस्था से यह अपेक्षा की है कि वे केवल पुराने ग्रन्थों के अनुवाद को शोध का विषय न बनाकर उसके क्षेत्र को व्यापक बनायें।

(४९) जनपदों की साहित्य सभाओं का कर्त्तव्य-

यह लेख भी वरहज में हिन्दी साहित्य परिषद् के तत्वाधान में

दिया गया एक छोटा सा भाषण है।

(५०) हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली-

इस निबन्ध में लेखक ने भारतवर्ष की पुरानी शिक्षा प्रणाली से लेकर आज तक की शिक्षा प्रणाली के सन्दर्भों एवं दृष्टान्तों को प्रस्तुत किया है।

(५१) ऊँची शिक्षा में हिन्दी माध्यम ''तथा''

साप्ताहिक हिन्दुस्तान १९ अगस्त १९७३ तथा २६ अगस्त १९७३ को क्रमशः प्रकाशित उपर्युक्त दोनों लेख विश्वविद्यालय को हिन्दी माध्यम बनाने के लिए लिखे गये तथ्यात्मक लेख हैं।

(५२) शिक्षा की सार्थकता-

यह लेख भी १६ मार्च १९७४ को का०सु० साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फैजाबाद में पठित दीक्षान्त भाषण है।

(५३) स्वतंत्रता संघर्ष का इतिहास-

यह निबन्ध विशुद्ध रूप से भारतवर्ष के स्वतंत्रता संग्राम का तथ्यपरक इतिहास है।

(५४) संकीर्णताओं पर हथौड़े की चोट-

२६ जनवरी १९५३ के अवसर पर लिखा गया यह लेख स्वतंत्र भारत में हुई व्यवस्था परिवर्तन तथा उपलब्धियों की ओर संकेत करने के लिए लिखा गया है।

(५५) राष्ट्रीय संकट और हमारा दायित्व-

यह लेख भी किसी अधिवेशन में दिया गया एक भाषण है जिसे पढ़ने से ऐसा लगता है कि यह भाषण देश पर हुए किसी आक्रमण को लेकर लिखा गया है।

(५६) लड़ाई खत्म हो गयी-

द्विवेदी जी ने इस लेख में १९७२ ई० में इन्दिरा गाँधी का भारी मतों से संसद में आने तथा मुक्ति वाहिनियों द्वारा पाकिस्तान का विभाजन

और दूसरे बंगलादेश के निर्माण की जो शर्त हास बनी, उसी के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है।

(५७) छब्बीस जनवरी गणतंत्र दिवस-

१९७३ में गणतंत्र दिवस के उपलक्ष्य में लिखा गया यह लेख इसी तिथि के सम्बन्ध में स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि को आधार मानकर लिखा गया है।

(५८) मैं सोचता हूँ-

३० अगस्त १९७३ का लिखा गया यह अत्यल्प लेख आपातकाल की घोषणा की प्रतिक्रिया मात्र है।

(६०) भोजपुरी साहित्य परम्परा-

शुद्ध रूप से भोजपुरी बोली में लिखा गया यह लेख १५ मई १९७६ को अखिल भारतीय भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन में पठित अध्यक्षीय भाषण है।

(६१) सन्तजीवन दर्शन परिषदाध्यक्ष भाषणम्-

संस्कृत के विभिन्न चिन्तन के तथ्यों से युक्त उदाहरणों वाला यह लेख वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित अखिल भारतीय दर्शन परिषद के अधिवेशन में २५ दिसम्बर १९६७ को पढ़ा गया भाषण है।

★ द्विवेदी जी के निबंध संग्रह 'अशोक के फूल' के निबंधों का सारांश

१. अशोक के फूल

प्रस्तुत निबन्ध में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने 'अशोक के फूल' की सांस्कृतिक परम्परा की खोज करते हुए उसकी महत्ता प्रतिपादित की है। इस फूल के पीछे छिपे हुये विलुप्त सांस्कृतिक गौरव की याद में लेखक का मन उदास हो जाता है और वह उमड़-उमड़ कर भारतीय रस-साधना के पीछे

हजारों वर्षों पर बरस जाना चाहता है। वह उस वैभवशाली युग की रंगस्थली में विचरण करने लगता है; जब कालिदास के काव्यों में नववधू के गृह प्रवेश की भाँति शोभा और गरिमा को बिखेरता हुआ 'अशोक का फूल' अवतरित हुआ था। कामदेव के पांच वाणों में सम्मिलित आम, अरविन्द, नील कमल तो उसी प्रकार से सम्मान पाते चले आ रहे है। हां, बेचारी चमेली की पूछ अवश्य कुछ कम हो गयी है, किन्तु उसकी माँग अधिक भी थी, तब भी एकमात्र अशोक ही भुलाया गया है। ऐसा मोहक पुष्प क्या भुलाने योग्य है, क्या संसार में सहृदयता मिट गयी है?

लेखक ईस्वी सन् की पृष्ठभूमि पर पहुँचकर सोचने लगता है, जबकि अशोक का शानदार पुष्प भारतीय साहित्य और शिल्प में अद्भुत महिमा के साथ आया था। सम्भवतः अशोक गन्धर्वों का वृक्ष है जिसकी पूजा गन्धर्वों और यक्षों की देन है । प्राचीन साहित्यों में मदनोत्सव के रूप में अशोक की पूजा का बड़ा सरस वर्णन मिलता है। राजघरानों की रानी के कोमल पद प्रहार से ही यह खिल उठता था। अशोक वृक्ष में रहस्यमयता है। यह उस विशाल सामन्ती सभ्यता की परिष्कृत रूचि का परिचायक है जो प्रजा के खून पसीने से पोषित होकर जवान हुई थी, लाखों और करोड़ों की उपेक्षा करके समृद्ध हुई थी।

मनुष्य की जीवन शक्ति बड़ी निर्मम है। यह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है। वह सभ्यता, संस्कृति, धर्माचारों, विश्वास, उत्सव, वृत्त किसी की भी परवाह न कर मस्तानी चाल से अपने रास्ते जा रही है। इस तेज धारा में अशोक कभी वह गया है। अशोक वृक्ष में एक प्रकार से कोई परिवर्तन नहीं आया है। वह उसी मस्ती में हँस रहा है। हाँ, उसे हमारा देखने का दृष्टिकोण अवश्य बदलता है। हम व्यर्थ उदासी को ओढ़े हुये मरे जा रहे हैं। कालिदास ने अपने ढंग से उसे रूप दिया है और हमें भी अपने दृष्टिकोण से आनन्द लेना चाहिए।

२. बसन्त आ गया है

यह निबन्ध उस समय लिखा गया है जबकि द्विवेदी जी 'शांति निकेतन' में निवास करते थे। द्विवेदी जी ने अपने समीपस्थ वृक्षों का अवलोकन करते हुए बताया है कि जब 'बसन्त आ गया है' इस आदर्श

की प्रतिध्वनि कवि समाज के साथ ही साथ इतर प्राणियों पर भी गूँज उठी है, तब इस शांति निकेतन में स्थित कुछ वृक्षों पर ऋतुराज के आगमन की सूचना पूर्व से ही मिल गयी है। जिससे वे अपने को स्वागत के लिए पुष्पों और नई कोपलों के रूप में सज्जित किये हुए हैं पर कुछ कारणों से बसन्तागमन के पूर्व सूचना ही उपलब्ध नहीं हो सकी। अतः वे ज्यों के त्यों नव विकास से ही अपने पूर्व रूप में ही खड़े हुए हैं।

बसन्त जब आता है तो प्रथमतः सबको न्यस्त व्यागमूर्ति बनाकर उनका पूर्व-संचित धन उन्मुक्त भाव से (पतझड़ के द्वारा) दान करा देता है; तब अपार सौन्दर्य रूप में पल्लवों, कोयलों और पुष्पों की सम्पत्ति उन्हें बाँट देता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के हाथ से से लगाई दो कृष्ण चूड़ायें हैं, जो अभी नादान हैं। अतः हरी-भरी रहकर भी फाल्गुन आषाढ़ मास की दशा को प्राप्त हैं। अमरूद के लिए तो हमेशा बसन्त ही रहता है। इसके अलावा विषमता यहाँ तक है कि कुछ समान परिस्थिति वाले वृक्ष भी समान रूप से विकसित नहीं हो पा रहे हैं।

लेखक के निवास के सामने कचनार का वृक्ष है जो स्वस्थ और सबल होते हुये भी फूलता नहीं है। पड़ोसी का कमजोर कचनार, शाखा-शाखा में पुष्प को धारण किये हुये है। 'कमजोरों' में भावुकता ज्यादा होती होगी[१]। इस कथन से लेखक ने इसकी अविकसितता की पुष्टि की है।

भारत के नवयुवक उमंग और उत्साह से हीन दिखाई देते हैं। ऐसा पढ़ने में आया है किन्तु लेखक की दृष्टि में तो भारत के पेड़ पौधे भी उमंगों से हीन दिखाई देते हैं, क्योंकि जो अविकसित वृक्ष है उन्हें अभी तक यही पता नहीं चल पाया है कि 'बसंत आ गया है'। महुआ और जामुन को देखने से लगता है कि बसन्त आता नहीं है, ले आया जाता है।[२] संवेदन की स्थिति में कचनार की भावुक प्रकृति बसन्त का अनुभव नहीं कर पाई है।

३. प्रायश्चित्त की घड़ी

आज का समय चेतना एवं जागृति का है। अतः दलितों एवं पिछड़े हुये लोगों की आवाज भी ऊँचे स्वर में स्वरित होने लगी है। भारतमाता का

---

१. बसन्त आ गया है, पृ० १८

२. बसन्त आ गया है, पृ० १८

सजीव चित्र उपस्थित करते हुये लेखक ने व्यक्त किया है कि जिस काल्पनिक भारतमाता की हम जयघोष करते हैं, उसकी सीमाओं का भी अवलोकन करना आवश्यक है। वस्तुतः भारतमाता के समृद्ध और उच्चवर्गीय ही पुत्र नहीं है; अपितु करोड़ों दलित निरन्तर एवं निर्वस्त्र लाल भी उसके बालक हैं। जागरणकाल में उच्च वर्ग के संचित संस्कारों को बड़ी ठेस लगेगी, उस महाआघात के लिए हमें पूर्व सतर्क हो जाना चाहिए।

विभिन्न जातियों के ऐतिहासिक विभाजन पर बल देते हुये लेखक ने कहा है कि इस देश में हिन्दू, मुसलमान, इसाई आदि अनेक जातियाँ रहती हैं जिसमें प्रमुखता हिन्दुओं की ही है। छूआछूत के आधार पर इन जातियों को चार भागों में बाँटा जा सकता है। (१) वे जातियाँ जिनके देखने मात्र से ब्राह्मण आदि ऊँची जातियों के वस्त्र अपवित्र हो जाते हैं। (२) वे जातियाँ, जिनके स्पर्श से शरीर और अन्न अपवित्र हो जाते हैं। (३) वे जातियाँ, जिनके स्पर्श से शरीर तो नहीं, पानी, घृत, पक्व भोजन आदि अपवित्र हो जाते हैं। (४) वे जातियाँ, जिनके स्पर्श से कच्ची रसोई अपवित्र हो जाती है।[१] सचमुच देखा जाय तो इन सबकी मिली-जुली प्रतीकात्मक संघमूर्ति का नाम भारतमाता है और भारतमाता का जय निनाद इन स्तर भेदों को विलीन करने के लिए ही है। इन युगों-युगों से संस्कारित वहमों को नष्ट करने के लिए बड़े संबल की आवश्यकता है।

भारत में कुछ पण्डितजन सभी परम्पराओं का मूल वेदों से खोजने में अभ्यस्त हैं। यही बात जातियों के विषय में भी है पर निश्चित् रुप से वर्तमान जटिलताओं का मूल, वैदिक वर्ण व्यवस्था नहीं है। अतः जाति निर्माण का कोई दृढ़ आधार नहीं है फिर भी सांकेतिक रुप में निम्न आधारों को प्रमुखता दी जा सकती है। (१) जन्म से बनी हुई जातियाँ (२) कर्म-परम्परा से बनी हुई जातियाँ (३) धन वितरण की असमानता से बनी हुई जातियाँ (४) राजनैतिक कारणों पर अवलम्बित जातियाँ । वैदिक आधार को लेकर (१) ब्राह्मण (२) क्षत्रिय (३) वैश्य (४) शूद्र जातियों का निर्माण हुआ ।[२] आम्भीर जाति देश की सीमा में घूमने वाली एवं लुटेरी जाति समझी जाती थी। परन्तु इनकी मर्यादा क्षत्रियों के समान मान ली गयी है।

दूसरे प्रकार की जातियाँ कार्य के आधार पर निर्मित हुई हैं। जैसे-

१. प्रायश्चित की घड़ी, पृ० २०
२. अशोक के फूल समीक्षा, पृ० ८७

चमार, सुनार, लुहार आदि। पेशे के कारण जाति का निर्माण बड़ा आश्चर्य उत्पन्न करता है। रिजली तथा धुर्य जैसे नृतत्वशास्त्रीय पर्यवेक्षकों का कहना है कि उत्तर भारत के चमारों में बंगाल के ब्राह्मणों की अपेक्षा अधिक आर्य सादृश्य है। वास्तव में जाति का सम्बन्ध जन्म, छूआछूत और विवाह तीन माने गये हैं।

तीसरे इस देश में रूढ़ियों को रोकने के लिए अनेक क्रान्तिकारी आन्दोलन हुये, फिर भी जाति प्रथा में किसी प्रकार का उन्मूलन नहीं हो सका एवं उसकी सफलता तो संदेहास्पद रही, आन्दोलनकारियों ने धार्मिक सम्प्रदाय को एक जाति ही बना डाला।

चौथे कुछ जातियाँ राष्ट्रीयता के आधार पर निर्मित हुई हैं जैसे नेपाल की नैवार जाति राष्ट्रीय जाति कही जाती है।

पाँचवें आर्थिक विषमता से बनी जातियों के लिए भी इतिहास का साक्ष्य प्राप्त है। धनवान व्यक्ति या धनी समाज उच्च जाति का माना गया है और निर्धनों की निम्न जाति स्वीकृत की गयी।

छठें राजनैतिक कारणों से भी जातियों का विकास और पतन हुआ है। वेदों के आधार पर पण्डितों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन जातियाँ ही स्वीकार की है। राजपूती सेना का वह अंग जो कलेवा की रक्षा करता था ''तलवार'' जाति में परिवर्तित हो गया।

इसी प्रकार यह जाति उपजाति में विभक्त हिन्दू समाज शता छिद्री है। इसको मनुष्यता के दरबार में ले जाने के लिए युग-युग से चली आती हुई संस्कार की शृंखला को शिथिल करना होगा। उस समय भारतीय सभ्यता, हिन्दू संस्कृति सचमुच नया रुप धारण करेगी।

४. घर जोड़ने की माया

प्रतिभायें हमेशा से अपने युग के बाह्याचारों, प्राचीन रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं निरर्थक विधानों की विरोधिनी रही है, किन्तु विचित्र तथ्य यह है कि परवर्ती काल में वे ही बाह्य जंजाल जिनका विरोध करते-करते उन्होंने अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये थे, उन्हीं की परम्परा पर हावी हो जाते हैं। जैसे धर्मवीर, कबीर के पीर, पैगम्बर, औलिया आदि के भजन पूजन की तीव्र भर्त्सना की गयी थी, किन्तु वह उन्हीं के गले पड़ी। संस्कृत को कूप

जल कह कर हिन्दी को बहता नीर माना था, किन्तु आगे चलकर उन्हीं की प्रशस्ति में अनेक स्तोत्र लिखे गये।

जिस बुद्धदेव ने ईश्वर के अस्तित्व के विषय में सन्देह प्रकट किया उसी को बाद में मान लिया। अहिंसा के महान पुजारी विश्वबंधु बापू की हत्या भी हिंसा के हाथों हुई। अन्ततः ऐसा विरोधाभास क्यों होता है? हमें इसे इतिहास के द्वारा सन्तुलित मस्तिष्क से सोचना चाहिए।

प्रत्येक बड़े यथार्थ का सम्प्रदाय के साथ मेल बैठाना ही मुख्य लक्ष्य हो जाता है। फलस्वरूप साधना की शुद्धता भी शनैः शनैः समाप्त हो जाती है, किन्तु यह भी गौण है। मुख्य है 'घर जोड़ने की माया'।

माया के चक्कर में पड़कर धन, मान, यश, कीर्ति के प्रलोभन में वे अनुयायी प्रवर्तक द्वारा प्रचारित ''सत्य'' से बहुत दूर जाते हैं। घर फूंकने वाली प्रकृति का लोप हो जाता है।

यह घर जोड़ने की माया निश्चित ही बड़ी प्रबल है। संसार में कोई एकाध ही ऐसा माँ का लाल होगा जो इस मायाविनी का शिकार होने से बच जाय। घर जोड़ने की माया का मूल आधार पैसा है। इसी मूलक राम के इर्द-गिर्द सारी साधना समाप्त हो गयी है। यदि पैसे का राज्य समाप्त हो जाता तो वह समूचा बेहूदा साहित्य लिखा ही न जाता जो केवल पन्थों और उनके प्रवर्तकों की महिमा बढ़ाने के उत्साह में बराबर उन बातों को ढंकने का प्रयास करता है, जिन्हें पंथ के प्रवर्तक ने बड़ी कठिन साधना से प्राप्त किया था। मेरा मन कहता है कि यह सम्भव है।[१]

५. मेरी जन्मभूमि

प्रत्येक प्राणी में अपनी जन्मभूमि के प्रति स्नेह और श्रद्धा होती है। आचार्य द्विवेदी जी भी अपने जन्मस्थली के प्रति अत्यन्त स्नेह, श्रद्धा एवं गौरव का अनुभव करते थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी जन्मभूमि के इतिहास को जितनी पैनी दृष्टि एवं भावुक हृदय से देखा है उतना अन्य साधारणजन नहीं देख पाता। उनके उस छोटे से गाँव में, अनेक जातियाँ, भारत की संस्कृति का इतिहास, भग्नावशेष की ईटों एवं कला आदि सभी

१. घर जोड़ने की माया, पृ० ३२

का समावेश हैं। आचार्य द्विवेदी जी ने साहित्य के इतिहास को केवल कुछ बड़े व्यक्तियों के उदय एवं अस्त होने के लिखित रूप को ही नहीं माना वरन् वह कहते हैं कि ''साहित्य का इतिहास मनुष्य के धारावाहिक जीवन के सारभूत रस का प्रवाह है।''

उनके जन्मे ग्राम का नाम उनके बाबा आरत दूबे के नाम पर पड़ा जो ओझवलिया ग्राम का ही एक भाग है। इनके गांव के पास गंगा, यमुना दोनों नदिया वास करती हैं। गाँव में छप्परों के मकान अधिकांशतः हैं।

द्विवेदी जी का कहना है कि बुद्धदेव जहाँ-जहाँ गये, यदि उन-उन स्थानों का मानचित्र बनायें तो यह ग्राम उसमें अवश्य आ जायेगा, क्योंकि वे अवश्य ही इस ग्राम से निकले होंगे, स्कन्दगुप्त की विशालवाहिनी भी इस ग्राम में रुकती हुई गयी होगी और स्कन्दगुप्त ने अवश्य यहाँ कोई घोषणा की होगी।

जातियों की पूर्व परम्परा से उनकी जन्मभूमि के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विकास को जाना जा सकता है। इनके गांव में कांटु (भड़भूजा) और कलवार, तुरहा जाति भी रहती है। ग्राम में मग ब्राह्मण भी निवसित हैं। वहाँ एक जाति 'दुसाध' भी रहती है, जो अति वीर और विनम्र होते हैं।

गांव में काली, भगवती, हनुमान जी, प्लेग मैया आदि देवी देवताओं के मंदिर भी हैं। प्लेग मैया का स्वरुप आश्चर्य का विषय है। इस देवी का स्वरुप पाश्चात्य सभ्यता का प्रतीक है।

प्रयत्नशील मानव की पिछली झाँकी को दिखाने का कार्य ऐतिहासिक अवशेष ही करते हैं। इन्हीं अवशेषों को देखकर मानव निरन्तर प्रगति करता है। लोगों में मनुष्यता भरनी है, तभी यथार्थ में मानव का विकास और कल्याण हो सकता है।

६.आपने मेरी रचना पढ़ी होगी

प्रस्तुत व्यंग्य प्रधान लेख में हास्य का पुट देते हुये द्विवेदी जी ने साहित्य क्षेत्र में रंगे स्यारों की कलई खोली है। यद्यपि स्वयं द्विवेदी जी गम्भीरतापूर्ण शैली में साहित्य सृजन करते हैं, फिर भी इस निबन्ध में उन्होंने बड़े संयम से विनोद की सृष्टि करके उथले साहित्यकारों पर व्यंग्य बाण बरसाये हैं।

विनोद, मानव में सरसता का संचार करता है। दार्शनिक मत के

अनुसार विनोद का प्रभाव रासायनिक होता है। दुर्दान्त डाकू में विनोदप्रियता का मिश्रण कर देने से वह प्रजातंत्र का लीडर बन सकता है। समाजसुधारक अखबारनवीस भी बन सकता है।

कलकत्ते के चिड़ियाघर के वनमानुष को देखकर लेखक की धारणा हुई कि वह चिन्तनशील है। अध्ययन के पश्चात् मालूम हुआ कि वे चिन्तित इसलिए हैं क्योंकि वे मानवों का भविष्य एवं संसार के रहस्य को जानते हैं।

साहित्य से सम्बन्ध रखने वाले पाँच प्रकार के जीवों लेखक, पाठक, सम्पादक, प्रकाशक तथा आलोचक के क्षेत्र और काम अलग-अलग हैं। एक ही व्यक्ति सब काम कैसे कर सकता है?

लेखक ने इसी कारण से प्रारम्भ में बताया था कि एक लेखक का दूसरे लेखक से अपने लेख के विषय में पूछना उस लेखक की रसशून्यता तथा विनोदहीनता प्रकट करता है। डॉक्टर भी उसका इलाज नहीं कर पाता अगर किसी दिन मानव को हसोड़ बना दे सकने वाली औषधि तैयार हो जाय। लेखक को दृढ़ विश्वास है कि उसके साहित्य से संसार में क्रान्ति का संचार किया जा सकता है।

७. हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली

भारतीय मनीषियों ने जीवन की अनेक समस्याओं को अनेक प्रकार की परिस्थितियों में देखा था और यथासमय उनके समाधान का मार्ग सोचा था। हमारी शिक्षा प्रणाली और ज्ञान प्रसार में भी परिवर्तन हुआ है।

भारत की उपलब्ध प्राचीन साहित्यों में ब्राह्मण और विद्या का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जाति व्यवस्था भारतीय समाज की सदैव से अपनी विशेषता है। संसार में आदि युग से ही विशेष कार्य वर्ग होते थे। विद्या पिता से ही सीखी जाती थी जिसके कारण विशेष विद्यायें विशेष कुलों में ही सीमाबद्ध रह जाती थीं। महाभारत में दो प्रकार के अध्यापकों का उल्लेख है- अपरिग्रही अध्यापक और वृत्ति पर नियुक्त अध्यापक।

ब्राह्मणों के लिए आदर्श था कि वह अत्यन्त निरीह भाव से गरीबी

की जिन्दगी में रहे किन्तु ऊँचे से ऊँचा ज्ञान और चरित्रबल रखे प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन इनसे वे अपना जीविकोपार्जन कर सकते थे। स्मृतिचन्द्रिका में यम के एकवचन के अनुसार '**प्रतिग्रहं अध्यापनं याजनानं प्रतिग्रहं श्रेष्ठतमं बदंति**'।[१]

सिद्धार्थ को ८६ कलायें ६४ काम कलायें सिखाई गयी थीं। महाभारत और पुराणों से पता चलता है कि यज्ञों तथा तीर्थों में आयोजित शास्त्रार्थों से जनता को ज्ञान मिलता है।

हमारे इतिहास में नाना प्रकार से शिक्षण के उदाहरण हैं जिनमें देशकाल पात्र के अनुसार किसी को कम एवं किसी को अधिक प्राप्त होता रहा है। निस्पृह, उदार, प्रेमी और चरित्रवान गुरु ही श्रेष्ठ माना जाता है। हमें योजनाओं में मनुष्य को नहीं ढालना है। वरन् योजनाओं को मनुष्य के आदर्श के अनुसार बनाना है। गुरु को महत्ता दिलानी है, एवं आदर्श गुरु की स्थापना करनी है।

८. भारत की सांस्कृतिक समस्या

विश्व में अनेक संस्कृतियाँ प्रकट हुई हैं, जिनमें भारतीय संस्कृति बहुत प्राचीन है। भारतीय संस्कृति पर अनेक संस्कृतियों का प्रभाव है। विभिन्न प्रभावों से समय-समय पर हमारी इस संस्कृति के समक्ष अनेक समस्यायें आईं, जो विशेष काल के लिए विकट बनी रहीं किन्तु फिर से समय के प्रबल वेग में वे बहती भी रहीं, हमारी संस्कृति पनपती रही।

द्विवेदी जी के अनुसार संस्कृति की तीन विशेषतायें हैं।

१. साधनाओं की परिणति २. विरोधहीन वस्तु ३. सामंजस्य स्थापित करने वाली। नाना प्रकार की जातियों का मिलन क्षेत्र भारतवर्ष है। इन मनुष्यों को कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर करना ही हमारी असली समस्या है।

मुसलमानों के आगमन एवं मुस्लिम धर्म के प्रचार होने पर भारतीय

---

१. स्मृति-चन्द्रिका पृ० १०

समाज में विषमता फैली। आचार्य द्विवेदी जी कहते हैं कि पेशा, धर्म तभी कहा जा सकता है जब उसमें व्यक्तिगत लाभ हानि की अपेक्षा सामाजिक लाभ की भावना प्रधान हो। तीन दिशाओं में हिन्दू मुसलमानों को एक करने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं।

१. आध्यात्मिक क्षेत्र में २. लौकिक क्षेत्र में और ३. विज्ञान क्षेत्र में।

भारत में सदैव कला, धर्म, दर्शन और साहित्य पनपा, जिसका परिचय उसने समूचे विश्व को दिया।

वर्तमान भारत में हम सबको अपना यही लक्ष्य बनाकर योजनाएँ बनानी है जिससे हमारी संस्कृति की यह समस्या दूर हो सके।

९. भारतीय संस्कृति की देन

हमारी भारतीय संस्कृति ने दुनियाँ की समस्त संस्कृतियों को प्रभावित किया है। संस्कृति किसी देश विदेश की कोई भिन्न वस्तु न होकर संसार के समस्त मनुष्यों की एक मानव संस्कृति है।

संस्कृति को किसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता क्योंकि वह सर्वोच्च एवं सर्वव्यापी होती है। भारतीय संस्कृति में विभिन्न विचारधाराओं के होने पर भी समन्वयवादी भावना है और इसी के कारण यह कभी मिट नहीं सकी तथा दुनियाँ को प्रेरणा देती रहेगी।

इसी संस्कृति का द्विवेदी जी ने इस निबन्ध में सुन्दर वर्णन किया है। आपने भारतीय संस्कृति की विशेषताओं एवं इसके विभिन्न तत्वों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है जो पठनीय है। भारतीय संस्कृति के भिन्न रूपों को जानने के लिए मुख्य तत्वों को जानना आवश्यक है इसमें आत्मिक आनन्द की प्राप्ति, वैराग्य, तीन वर्णों की महत्ता, संयम, अहिंसा और व्यापक दृष्टिकोण के साथ-साथ महान साहित्य की देन आदि आदर्शों का विशाल भण्डार है जो किसी भी देश को अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। हमारी संस्कृति ने विश्व के अनेक राष्ट्रों को बहुत कुछ दिया है, जिसके कारण ही आज वे उन्नति

शिखर पर पहुँच सके। यह सब भारतीय संस्कृति की देन है।

१०. हमारे पुराने साहित्य इतिहास की सामग्री

भारतीय समाज में विभिन्न देशों के जनसमूह आते रहे हैं और अपने आचार विचार से प्रभावित करते रहे हैं। साहित्य का इतिहास पुस्तकों, उनके लेखकों और कवियों के उद्भव विकास की कहानी ही नहीं वरन् वह मानव समाज के विकास की कथा हैं। श्रेडर ने संहिताओं का विपुल साहित्य उपस्थित किया है जो इस प्रकार है-

१. जैन और बौद्ध अपभ्रंश का साहित्य

२. कश्मीर के शैवों और दक्षिण तथा पूर्व तांत्रिकों का साहित्य

३. उत्तर और उत्तर पश्चिम के नाथों का साहित्य

४. वैष्णव आगम साहित्य

५. पुराण साहित्य

६. निबन्ध ग्रन्थ

७. पूर्व के प्रच्छन्न और वैष्णवों का साहित्य

८. विविध लौकिक कथाओं का साहित्य

उपर्युक्त सभी बिन्दुओं का वर्णन पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने अपने इस निबन्ध में किया है जो विचारणीय एवं अतुलनीय है।

११. संस्कृत का साहित्य

संस्कृत साहित्य के अब दो रूप मिलते हैं- १. वैदिक २. लौकिक। संस्कृत साहित्य का मूल स्वरूप वैदिक साहित्य है जो अपनी विशेषताओं के लिए विख्यात है।

लौकिक संस्कृत साहित्य का रचनाकाल भारतीय इतिहास में क्रान्तियुक्त था। गुप्तकाल में पुराणों एवं स्मृतियों का सम्पादन किया गया। संस्कृत के साहित्यकार साधक थे। संस्कृत का साहित्य हमें अनेकों प्रकार का ज्ञान देता है। आचार्य द्विवेदी जी ने 'संस्कृत का साहित्य' निबंध के अन्तर्गत संस्कृत की

महत्ता को अपनी भाषा में अभिव्यंजित किया है।

१२. पुरानी पोथियाँ

भारत में लेखन कला प्राचीन होती हुई भी जलवायु की प्रतिकूलता की भाँति पुरानी पोथियाँ प्राप्त नहीं हो पाती । भारत में सबसे अधिक प्राचीन ग्रन्थ भोजपत्र या ताम्रपत्र पर लिखे जाते थे। 'हरिकेलि' और 'ललित विग्रह राज' नाटक शिला पट्टों पर खुदे मिलते हैं।

भारत में नवीन जागरण के साथ पुरानी पोथियों के संग्रह की प्रेरणा भी मिली। कश्मीर, नेपाल, तिब्बत, केरल, तमिल प्रदेशों से अनेक ग्रन्थ मिले हैं।

यह सत्य है कि भारतीय साहित्य, संसार में सर्वोत्तम एवं मानव कल्याण में रत रहा है और अधिक खोज किये जाने पर विश्व के लिए बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है।

१३. काव्यकला

काव्य भी एक कला है। इस निबन्ध में कुमार सिद्धार्थ को सिखाई गयी ६४ काम कलाओं, बौद्ध ग्रन्थों में ८४, जैन ग्रन्थों में ६२ कलाओं, कायस्थों की १६ कलाओं, सुनारों की ६४ कलाओं आदि का वर्णन किया गया है।

समाज और सभाओं में मनोरंजन का साधन उक्ति वैचित्र होता था। प्रतिभा और अभ्यास से काव्य का सृजन होता है।

इनके सबके अतिरिक्त १० गुणों, अलंकारों, वक्रोक्ति, वस्त्रों के प्रकार रत्नों आदि का वेदों एवं संहिताओं और काव्य सिद्धान्तों के आधार पर लेखक ने अपने काव्यकला निबन्ध में बड़ी ही कुशलता से सुन्दर वर्णन किया है।

१४. रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गान

इस निबन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उनके राष्ट्रीय एवं उद्‌बोधन गीतों की विशेषताओं का वर्णन किया है।

रवीन्द्रनाथ के मधुर संगीतमय गीत, व्यक्ति की आत्मा को आनंदित और रोम-रोम को झंकृत कर चेतना को संचरित कर देते हैं।

तवे पॅथेर काँटा,
ओ तुई रक्तोमाखा चरण तॅले,
एक्ला दलो रे-।।

१५. एक कुत्ता और एक मैना

प्रस्तुत निबन्ध भावात्मक शैली में लिखा गया है। यह निबन्ध संस्मरणात्मक है। विषय विस्तार ज्यादा नहीं है फिर भी भावों से भरा पड़ा है। इसमें गुरुदेव की मर्मभेदी दृष्टि ने इस भाषाहीन प्राणी (कुत्ता और मैना) की करुण दृष्टि के भीतर उस विशाल मानव सत्य को देखा है जो मनुष्य के अन्दर भी नहीं 'पाता'। इसी विषय को श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने सुबोध एवं सरल भाषा शैली में 'एक कुत्ता और एक मैना' शीर्षक निबन्ध के माध्यम से कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रतिभा का वर्णन करने का प्रयास किया है।

१६. आलोचना का स्वतंत्रमान

हमारे साहित्य में जितना भी आलोचना का अंश है वह यथार्थ रुप में आलोचना का स्वतंत्र अंश नहीं वरन् दूसरों की निन्दा मात्र है, जो व्यर्थ और त्याज्य है। वस्तुतः आलोचक को आलोचना स्वतंत्र रुप में ही करनी चाहिए, किसी के दबाव में आकर या प्रशंसा रुप में नहीं करनी चाहिए।

सम्भवतः इसी तथ्य को आचार्य जी ने अपने इस निबन्ध के माध्यम से आलोचकों और जनता को समझाने का प्रयास किया है।

१७. साहित्यकारों का दायित्व

देश के दर्शन, ललित कलायें सभी अध्ययन के विषय हैं। इनका साहित्य गम्भीर एवं महत्वपूर्ण होता है। उन ग्रन्थों का सम्पादन, संशोधन और अनुवाद हमें करना है। विदेशी साहित्य से भी हमें सार ग्रहण करना है। पश्चात्य और अपने साहित्य का रस लेकर हिन्दी साहित्य को बलवती बनाया जा सकता है। हमें हिन्दी को केवल पुस्तकों एवं विद्वानों की भाषा

नहीं बनानी है वरन् उसे इस योग्य करना है कि साधारण से साधारण बुद्धि वाले तथा अत्यन्त विकसित बुद्धि वाले लोग उससे बहुत कुछ प्राप्त कर सकें। यही साहित्यकारों का दायित्व होना चाहिए।

१८. नया वर्ष आ गया

'नया शब्द का अर्थ है कुछ न कुछ नवीन या परिवर्तन'

'नया वर्ष आ गया' इस शब्द का अर्थ है- गत वर्ष की परिपाटी में कुछ न कुछ नवीनता का आ जाना। नया वर्ष भारत में चैत्र शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को प्रारम्भ होता है। इसी दिन से नूतन वर्ष की गणना होने लगती है। जनता नये वर्ष के आगमन पर हर्षोल्लसित हो जाती है। भाँति-भाँति के उत्सव सम्पन्न होते हैं। भारत में विदेशियों के आक्रमणों एवं संघर्षों के बाद भी इस संवत्सर ने समन्वित बनाये रखने का आश्चर्यपूर्ण कार्य इस निबन्ध के माध्यम से कराया है।

१९. भारतीय फलित ज्योतिष

इस निबन्ध में फलित ज्योतिष के ऐतिहासिक विकास की कहानी एक मनोरंजक प्रस्तुति एवं महत्वपूर्ण विषय है। यह अजीब विरोधाभास है कि जिस विद्या में देश की सम्पूर्ण जनता पर अपना अद्भुत प्रभाव जमाकर रखा है, उसके विषय में लोग बहुत कम जानते हैं। भारतीय फलित ज्योतिष के माध्यम से हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पाठकों को थोड़ा बहुत ज्ञान देने का सार्थक प्रयत्न किया है।

२०. सावधानी की आवश्यकता

आचार्य द्विवेदी जी देश के स्वतंत्र हो जाने पर साहित्यिक क्षेत्र में नवीन प्रयोगों के विषयों में सावधानी रखने के लिए साहित्यकारों को सचेत कर रहे हैं कि आज के शिक्षित जन समुदाय में उत्पन्न सन्देह और अविश्वास का भाव उनकी दृष्टि में मनुष्य की मानसिक दासता है। ऐसे साहित्यों की आवश्यकता है जो हमारे युवकों में मनुष्यता, उमंग, अन्याय से जूझने का

उन्माद पैदा करें और अपने अधिकारों के लिए मिट जाने के लिए अकुण्ठ साहस का संचार करें। मँहगी से मँहगी पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन कर सम्पादक अपने को प्रगतिशील कहता है। द्विवेदी जी के अनुसार प्रगतिवादी रचनायें वही हैं; "जिनमें संसार को नये सिरे से उत्तम रूप ढालने का दृढ़ संकल्प हो। जो रचना केवल हमारी मानसिक चिन्ताओं का विश्लेषण करने का दावा करके हमें जहाँ का तहाँ छोड़ देती है उसमें गति ही नहीं है।" यह बिल्कुल असत्य है कि सभी प्रगतिवादी रचनायें मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन करती हैं।

युवा साहित्यकारों को मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण शास्त्र ने बहुत प्रभावित किया है। मनुष्य में स्वतंत्र इच्छाशक्ति कल्पना मात्र है। उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य में ही संसार को आदर्श रूप में गढ़ने की उत्कट अभिलाषा जागृत हुई। बीसवीं शताब्दी मनोविज्ञान और प्राणी विज्ञान का युग है। डरविन के अनुसार मनुष्य पशु का विकसित रूप है। मनुष्य को अज्ञान मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षिता से बचाना ही साहित्य का परम लक्ष्य है। भारतीय नर नारियों की भाषा हिन्दी इस उद्देश्य को पूर्ण कर सकती है। साहित्य हितेन भाव होना चाहिए।

इसके अलावा देश में प्रचलित कुछ रीति रिवाज, जाति भेद, छुआछूत, आचार-विचार, पूजा-उपासना आदि मनुष्यों की चिन्ता वृत्ति को दूषित बना रहे हैं। इन सबको दूर करने के लिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता है।

हमारे देश के तरुण साहित्यकारों को भी अपना लक्ष्य पूरा करने का यह स्वर्ण अवसर प्राप्त है। दुविधा और झिझक की आवश्यकता नहीं। उसे अपना मार्ग स्वयं खोजना है। मानव-चरित्र निर्माण करना है। साहित्यिक प्रयोग करते समय सावधानी से कार्य करना चाहिए।

*****

द्वितीय अध्याय

'उपजीव्य' शब्द की व्याख्या, परिभाषा एवं लक्षण

उपजीव्य' शब्द की व्याख्या, परिभाषा एवं लक्षण

उप + जीवति इति उपजीव्यः अर्थात् जिसकी छाया में जीवन ग्रहण किया जाय उसे उपजीव्य कहते हैं। उपजीव्य शब्द का अर्थ है- लिखने के लिए विषय सामग्री देने वाला या जिससे मनुष्य सामग्री प्राप्त करे[१] तथा कोई स्रोत या प्रामाणिक ग्रंथ।[२] इनका प्रथमतः प्रयोग महाभारत में मिलता है, किन्तु द्विवेदी जी ने अपने प्रथम उपन्यास 'वाणभट्ट की आत्मकथा' के आरम्भ में इसका उपयोग करते हुये लिखा है- आत्मकथा प्रकाशित हो रही है, विचार था कि समाप्त होने के बाद इस कथा पर एक विस्तृत आलोचना लिखी जाये किन्तु समय के अभाव में ऐसा हो नहीं सका। सहृदय पाठकों के लिए यह कार्य छोड़ दिया गया। वाणभट्ट और हर्षदेव के ग्रंथ कथा के प्रधान उपजीव्य रहे हैं।[३] अतः स्पष्ट है कि द्विवेदी जी प्रगट इच्छा थी कि उनके साहित्य संदर्भों के उपजीव्यों को ध्यानपूर्वक पढ़ा जाय और उस पर समुचित शोध भी किया जाय।

द्विवेदी जी ने अपने ग्रंथों में कहीं तो मूल ग्रंथों से तो कहीं उपजीव्य ग्रंथों से उपजीव्य से उपजीव्य ग्रहण किया है। इससे यह परिलक्षित होता है कि द्विवेदी जी ने केवल मौलिक ग्रंथों का ही अध्ययन नहीं किया अपितु सम्पूर्ण साहित्य चाहे वे नाटक, उपन्यास, चम्पूकाव्य, खण्ड काव्य ही क्यों न हो, सबका अध्ययन किया है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में तुलसी की समन्वय भावना, दण्डी का पदलालित्य, भारवि की अर्थवक्ता,

१. आप्टे-संस्कृत हिन्दी शब्द कोष, पृ०-२०४
२. इत्यलमुपजीव्यानां मान्यानां व्याख्यानेन कटाक्षेपेण (साहित्य दर्पण/२१)
३. वाणभट्ट की आत्मकथा : निवेदक खण्ड-ग्रंथावली, भाग-१, पृ०५

वाणभट्ट की गद्य शैली आदि कूट-कूट कर भरी पड़ी है।

रामायण तथा महाभारत महाकाव्य हमारे प्रमुख उपजीव्य ग्रन्थ हैं।

भारतीय सभ्यता का भव्य रुप इन ग्रंथों में जिस प्रकार स्फुटित हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं है; अपितु हमारे हिन्दू धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी इसका प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व हजारों वर्षों से जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य करता आ रहा है। इसलिए इतिहास ग्रंथ को हम अपना धर्म ग्रंथ मानते आये हैं, जिनका पठन-पाठन, श्रवण-मनन, सबसे हमारा कल्याण है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रंथ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध रुप को पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ ''भगवद्गीता'' इसी महाभारत का एक अंश है। इसके अतिरिक्त 'विष्णु सहस्त्रनाम', 'अनुगीता', 'गजेन्द्र मोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्ति पूर्ण ग्रन्थ यहीं से उद्धृत किये गये हैं। इन्हीं पाँच रत्नों को 'पंचरत्न' के नाम से पुकारते हैं।

वाल्मीकि के समान व्यास जी भी संस्कृत कवियों के लिए उपजीव्य हैं। महाभारत के उपाख्यानों का अवलम्बन कर ही कालान्तर में हमारे कवियों ने काव्य नाटक, गद्य-पद्य, चम्पू कथा, आख्यायिका आदि नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है। इतना ही नहीं जावा, सुमात्रा के साहित्य में भी महाभारत, रामायण, विद्यमान हैं। वहाँ के लोग भी महाभारत के कथानक से उसी प्रकार मनोरंजन करते हैं। जिस प्रकार यहाँ के लोग। महाभारत इतना विशाल है कि व्यासजी का यह कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है; कि 'इस ग्रंथ में जो कुछ है वह अन्यत्र है, परन्तु जो कुछ इसमें नहीं है; वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।[१] प्राचीन राजनीति को जानने के लिए हमें इसी ग्रन्थ की शरण लेनी पड़ती है। विदुरनीति, जिसमें आचार तथा लोक व्यवहार के नियमों का सुन्दर निरूपण है। यह महाभारत का ही एक अंश है। इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक गौरवपूर्ण उपजीव्य ग्रन्थ है।

१. धर्मे ह्यर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ
यदि ह्यास्ति तदन्यत्र यन्नेह्यास्ति न तत् क्वचित ।। महाभारत

महाभारत में इसकी उपजीव्यता का उल्लेख है।

सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।

पर्जन्य इव भूतोनामक्षयो भारतद्रुमः।[१]

बादल की तरह प्राणियों के लिए अक्षय महाभारत रुपी वृक्ष सभी मुख्य कवियों का उपजीव्य होगा। अर्थात् जिस प्रकार बादल अपने जल की वृष्टि कर स्थल के सभी पशु, पक्षी, नदी-नाले, वृक्ष, जीव, प्राणी सभी का परोक्ष तथा प्रत्यक्ष रुप में कल्याण करता है उसी प्रकार यह महाभारत आगे चलकर कवियों को प्रसिद्धि प्रदान कराने वाला प्रधान उपजीव्य होगा।

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।

पंचमयः इव भूतेभ्यो लोकसंविधयस्त्रयः।।[२]

इस उत्तम (महाभारत के) इतिहास से कवियों को बुद्धि उत्पन्न होती है। जैसे- पंचमहाभूतों (पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश) से तीनों लोकों की उत्पत्ति होती है।

महाभारत के इस श्लोक से सिद्ध होता है कि सद्ग्रंथ पढ़ने से सद्बुद्धि होती है। यदि कोई व्यक्ति मारधाड़ वाली कहानी या इतिहास पढ़ेगा तो उसकी बुद्धि हमेशा वही कार्य करने के लिए तत्पर रहेगी जो उसने साहित्य में पढ़ा है। साहित्य मनुष्यों का कल्याण करने वाला होना चाहिए।

इदं कविवरैः सर्वैराख्यामुपजीव्यते।

उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैराभिजातः इवेश्वरः।।[३]

यह महाआख्यान सम्पूर्ण श्रेष्ठ कवियों के द्वारा उपजीवित रहता है। जैसे- राजा उदय चाहने वाले सेवकों के द्वारा सुशोभित होता है।

निष्कर्ष-

उपजीव्य हमारे लिए एवं कवियों तथा साहित्यकारों के लिए श्रेष्ठ

---

१ महाभारत आदि० १-१०८

२. महाभारत आदि० २-३८६

३. महाभारत आदि० २-३९०

हैं। 'उपजीव्य' आवश्यक नहीं है कि कोई विशेष ग्रन्थ ही हो। उपजीव्य स्थान विशेष, वस्तु विशेष एवं व्यक्ति विशेष भी हो सकते हैं। वैसे तो महाभारत, रामायण भारतवर्ष में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व के उपजीव्य हैं। इसी से कवियों तथा लेखकों की लेखनी को पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती रही है। आज के औद्योगिक युग में सभी को जीविका प्राप्त होना एक कठिन कार्य हो गया है परन्तु महाभारत तथा रामायण से कथानक निकालकर अपने नाम से छपाकर कितने विद्वान् धनान्वित हो रहे हैं। अब बाणभट्ट के उपन्यास 'कादम्बरी' में कोई ऐसा अलंकार, शैली, शब्द, रचना, वाक्य आदि बाकी नहीं रहा है जो भट्टजी से अछूता रहा हो। अतः कहा गया है **''वाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्''** इसलिए यह सिद्ध होता है कि जितने भी गद्य, पद्य, संग्रह आदि काल से लिखे जा रहे हैं वे किसी न किसी के आवश्यक उपजीव्य ही है।

*****

तृतीय अध्याय

द्विवेदी जी के विवेच्य निबन्ध-संग्रह के उपजीव्य

- ★ संस्कृत ग्रंथों के उपजीव्य
- ★ हिन्दी ग्रंथों से प्राप्त उपजीव्य
- ★ बंगला भाषा एवं साहित्य के उपजीव्य
- ★ बौद्ध ग्रंथों से प्राप्त उपजीव्य
- ★ स्वरचित उपजीव्य

द्विवेदी जी के विवेच्य निबन्ध-संग्रह के उपजीव्य

★ संस्कृत ग्रन्थों के उपजीव्य

मनोजन्मा ने देवता शिव पर अपना रत्नमय बाण फेंका जो जलकर राख हो गया था, परन्तु वामन पुराण के आधार पर ज्ञात होता है कि उनका रत्नमय धनुष धरती पर गिरा और अनेक पुष्पों में परिवर्तित हो गया। मूठ वाला स्थान रूक्म मणि से बना था; वह धरती पर गिरते ही चम्पे का फूल बन गया, हीरे का बना हुआ स्थान; मौलसरी के मनोहर पुष्पों में परिवर्तित हो गया, इन्द्रनील मणि से बना कोटि देश; सुन्दर पाटल पुष्पों में परिवर्तित हुआ, चन्द्रकान्ता मणियों से बना हुआ मध्य देश; चमेली और विद्रुम से निम्नतर कोटि बेला बनायी गयी।[१] हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'अशोक के फूल' निबन्ध में शिव पर बाण फेंकने वाले कामदेव के धनुष का परिणाम उपर्युक्त वर्णन में बताया है।

प्राचीन साहित्य में अशोक वृक्ष की पूजा के उत्सवों का बड़ा सरस वर्णन मिलता है । इस उत्सव को 'मदनोत्सव' कहते हैं यह उत्सव त्रयोदशी के दिन होता है।[२]

इस उत्सव का अनेक ग्रन्थों में बड़ा ही मनोहर वर्णन देखने को मिलता है जिसका वर्णन द्विवेदी जी ने 'अशोक के फूल' निबन्ध में किया है। जो इस प्रकार है-

१. वामन पुराण, अध्याय ६, श्लोक सं०९६ से लेकर १०२ तक, पृ०-४७
२. महाराज भोज का 'स्वरस्वती कंठाभरण'

कुसुमायुधप्रियदूतको मुकुलायितवहचूतकः।
शिथिलयतिमानग्रहणको वाति दक्षिणापावकः।।

अर्थात् कामदेव का प्रिय दूत अनेक आम्र वृक्षों को मुकुलित करने वाला प्रणय कलह को शिथिल करने वाला, दक्षिण पवन वह रहा है।[१]

विकसित बकुलामोदकः काङ्क्षित प्रियजनमेलकः।
प्रतिपालना समर्थको भ्राम्यति युवतिसार्थकः।।

अर्थात्- मौलसरी तथा अशोक को विकसित करने वाला प्रियजनों के साथ की इच्छा करने वाला, प्रियजन के आगमन की प्रतीक्षा करने में असमर्थ युवतियों का समूह व्याकुल हो रहा है।[२]

इह प्रथमं मधुमासो जनस्य हृदयानि करोति मृदुलानि।
पश्चाद्विध्याति कामो लब्धप्रसरैः कुसुमबाणैः।।

अर्थात्- वसन्त मास लोगों के हृदय को कोमल बना देता है।

फिर कामदेव अवसर पाकर पुष्पवाणों से उन्हें विद्ध कर देता है। यही नहीं 'मालविकाग्निमित्र' और 'विक्रमोर्वशीय' में भी इस उत्सव का विषद् वर्णन किया गया है यथा- **'रक्ताशोकरूचः विशेषित गुणो विम्वाधरालक्तकः'**

यह लाल अशोक की ललाई तो स्त्रियों के विम्बाधरों की ललाई को लजा रहा है।[३] यही नहीं 'अशोक के फूल' के खिलने के बारे में राजा कहता है-

अनेन तनुमध्या मुखरनूपुराराविणा
नवाम्बुरूहकोमलेन चरणेन संभावितः।
अशोकयदि सद्य एव मुकुलैर्न संपत्स्यसे
वृथा वहसि दोहदं ललितकामिसाधारणम्''।।[४]

कालिदास जैसे कल्पकवि ने अशोक के पुष्प का ही नहीं, किसलयों को भी मदमत्त करने वाला बताया था- सम्भवतः शर्त यह थी कि वह

१. रत्नावली प्रथम अंक, श्लोक-१४
२. रत्नावली प्रथम अंक, श्लोक-१५
३. मालविकाग्निमित्रम्, तृतीय अंक, श्लोक-५
४. मालविकाग्निमित्रम्, तृतीय अंक, श्लोक-१७

दयिता के कानों में झूम रहा हो-

''किसलयप्रसवोऽपि विलासिनां मदयिता दयिताश्रवणार्पितः।।[१]

परन्तु शाखाओं में लंबित, वायु लुलित किसलयों में भी मादकता है। मेरी नस-नस में आज करुण उल्लास की झंझा उत्थित हो रही है। हजारी प्रसाद जी ने अपने उदास रहने के कारण को इसके माध्यम से संदर्भित करने का प्रयास किया है; उनका कहना है कि माया काटे नहीं कटती। उस युग के साहित्य और शिल्प मन को मसल दे रहे हैं। 'अशोक के फूल' ही नहीं किसलय भी हृदय को कुरेद रहे हैं।[२] आज इसकी यह दशा है और पहले उसकी क्या दशा थी।

'बसन्त आ गया है' इस निबन्ध में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि जरा सी हवा चली नहीं कि आस्थिमालविका वाले उन्मत्त कापालिक भैरव की भाँति खड़-खड़ा झूम उठते हैं। **'कुसुमजन्म ततो नव पल्लवाः'** का कहीं नाम गंध भी नहीं है। कालिदास कुमार संभव में कहते हैं कि वहाँ नवीन पल्लवों से युक्त वृक्षों में पुष्प आ गये हैं। परन्तु द्विवेदी जी शांति निकेतन के वृक्षों को देखकर बड़े आश्चर्य में पड़े हैं कि बसन्त आ गया और अभी इनमें पुष्प नहीं आये।

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान् राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः।।

यह कथन गीता में संजय का है वे कहते हैं- हे राजन् श्री हरि के (जिसका स्मरण करने मात्र से पापों का नाश होता है उसका नाम हरि है) अत्यन्त विलक्षण रुप को भी पुनः पुनः स्मरण करके मेरे चित्र में महान् आश्चर्य होता है और मैं बार-बार हर्षित हो रहा हूँ।[३]

इतिहास ने जनता जनार्दन के अपने रुपों का परिचय दिया है परन्तु भावी जनार्दन का रुप शायद अपूर्व और अद्भुत होगा। इसी का वर्णन

१. रघुवंशम, ९/२८
२. अशोक के फूल, पृ०-१५
३. गीता, १८.७७

उपरिलिखित सन्दर्भ के माध्यम से अपने निबन्ध प्रायश्चित् की घड़ी में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी बताने का प्रयास किया हैं। वे कहते हैं कि भविष्य का इतिहास-लेखक भी जनता जनार्दन के इस रुप को देखकर संजय की तरह ही विस्मय-विमुग्ध होकर यही वाक्य कहेगा।

द्विवेदी जी अपने निबन्ध हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली में कहते हैं कि गुरु एवं शिष्य की परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। 'शतपथ ब्राह्मण' से पता चलता है कि याज्ञवल्क्य ने जनक से विद्या सीखी थी। महाभारत से तो अनेक शूद्र-कुलोत्पन्न ज्ञानी गुरुओं का पता चलता है। मिथिला में एक धर्मनिष्ठ व्याध परमज्ञानी थे। तपस्वी ब्राह्मण कौशिक ने उनसे ज्ञान पाया था। शूद्रागर्भजात विदुर बड़े ज्ञानी थे। यहाँ द्विवेदी जी सम्भवतः यही कहना चाह रहे हैं कि शिक्षा या ज्ञान किसी जाति विशेष की थाती नहीं है। वह किसी में भी सम्पन्न हो सकती है और जाति भेद के नाम पर शिक्षा न ग्रहण करना मूर्खता है; नहीं तो विद्यायें विशेष कुलों में ही सीमाबद्ध रह जाती है।

''प्रतिग्रहाध्यापनयाजनानां प्रतिग्रहं श्रेष्ठतमं वदन्ति''[१]

यह वाक्य स्मृतिचन्द्रिका में यमराज का है वे कहते हैं- प्रतिग्रह याजन और अध्यापन इन तीनों में प्रतिग्रह ही सर्वोत्तम वृत्ति है, परन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी 'अशोक के फूल' में हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के सन्दर्भ में कहते हैं कि उस समय प्रतिग्रह को श्रेष्ठ कहकर पंडितों की परम्परा बचा रखने की व्यवस्था की गयी होगी।[२] क्योंकि उन दिनों आर्यावर्त में अनेक विदेशी जातियों का बार-बार आक्रमण होता रहा।

''धर्मो यो बाधते धर्म न स धर्मो कुधर्म तत् ।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मो मुनिसत्तम।।[३]

गीता का यह कथन भगवान् श्री कृष्ण का है वे कहते हैं-यदि तूँ समझे कि इन्द्रियों को रोककर कामरूप बैरी को मारने की मेरी शक्ति

१. स्मृति चन्द्रिका
२. अशोक के फूल, पृ०-५५
३. महाभारत, वन पर्व, १३.१०, ११,१३

नहीं है तो तेरी यह भूल है। क्योंकि इस शरीर से तो इन्द्रियों को परे (श्रेष्ठ बलवान और सूक्ष्म) कहते हैं और इन्द्रियों से परे मन है, और मन से परे बुद्धि हैं और जो बुद्धि से भी अत्यन्त परे वह आत्मा है। द्विवेदी जी इस सन्दर्भ को भारतीय संस्कृति की देन निबन्ध में संदर्भित कर समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि जो वस्तु इन्द्रियों को सन्तुष्ट करें वह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है। जो वस्तु मन को सन्तुष्ट कर सके वह पहली से सूक्ष्म होने पर भी बहुत बड़ी नहीं है। जो बुद्धि को संतोष दे सके वह जरूर बड़ी है, पर वह भी वाह्य है। बुद्धि से परे कुछ है; वही वास्तव में बड़ी है, उसका संतोष ही काम्य है।[१]

मनुस्मृति के छठें अध्याय में कहा गया है कि जो इनको चुकाये बिना ही मोक्ष की कामना करता है, वह अधः पतित होता है-

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेव्यमानो ब्रजत्यधः ।।[२]

अर्थात-तीनों ऋण-देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण इनका संशोधन किये बिना जो मोक्षार्थी होकर सन्यास ग्रहण करता है वह ऋण न चुकाकर सन्यासी होने पर भी नरक जाता है। द्विवेदी जी इसके माध्यम से **'भारतीय संस्कृति की देन'** नामक निबन्ध में कहते हैं कि जो तुम्हारे पास हो उसे सबको बाँटकर ग्रहण करो। क्योंकि ये तीनों ऋण मनुष्य पर जन्म से ही लद जाते हैं। इनको चुकाये बिना मोक्ष पाना पाप है।

द्विवेदी जी गोरखपंथी मछंदरनाथ के नाम का औचित्य प्रस्तुत करते हुए 'हमारे पुराने साहित्य के इतिहास की सामग्री' में कहते हैं कि हिन्दी के पुस्तकों में इनका नाम ''मछंदर'' आता है। परवर्ती संस्कृत ग्रन्थों में इसका शुद्धीकृत संस्कृत रूप ही मिलता है, वह रूप है ''मत्स्येन्द्र, परन्तु साधारण योगी मत्स्येन्द्र की अपेक्षा ''मछंदर'' नाम ही ज्यादा अच्छा लगा है। श्री चन्द्रनाथ योगी जैसे शिक्षित और सुधारक योगियों को अशिक्षितों की यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगी है।[३]

---

१. अशोक के फूल पृ० ७४
२. मनुस्मृति, अध्याय-६, श्लोक-३५
३. योगिसंप्रदायाविष्कृति, पृ०-४४८-९

दार्शनिकों में श्रेष्ठ आचार्य अभिनव गुप्तवाद के मत से आतानवितान वृत्यात्मक जाल को काट सकने के कारण वे मछंदर कहलाये।[१]

वाराहमिहिराचार्य ने बृहज्जातक टीका में ऐसे बहुत से ज्योतिर्विदों का नाम लिखा है जो कि उनसे पहले हो गये थे। जैसे-यम, पवन, मणित्य, शक्ति, सत्य, वली, विष्णुगुप्त, देवगुप्त, देवस्वामी, सिद्धसेन, जीव शर्मा, पृथुशा आदि। वाराहमिहिर ने भी मान लिया है कि ज्योतिषशास्त्र में पवनों का Gonians, Greeks विशेष दक्षता थी वे कहते हैं-

म्लेच्छा हि पवनास्तेषु, सम्यक्, शास्त्रमिदं स्थितम् ।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते, किं पुनर्दैवविद्द्विजः ।।[२]

म्लेच्छ (कदाचारी) यवनों के मध्य में इस शास्त्र की विशेष आलोचना है, इस कारण वे भी ऋषि तुल्य पूजनीय है, शास्त्र को जानने वाला ब्राह्मण हो तब तो बात ही क्या है। अतः इस सन्दर्भ से द्विवेदी जी **'संस्कृत का साहित्य'** नामक निबन्ध में कहना चाह रहे हैं कि चाहे व्यक्ति शूद्र हो या म्लेच्छ यदि वह ज्योतिष शास्त्र का अच्छा ज्ञाता हो तो वह ऋषि के समान पूजनीय है, उसे ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं है।

''नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते''

द्विवेदी जी कहते हैं ज्ञान के समान पवित्र वस्तु कुछ भी नहीं है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी **'काव्यकला'** नामक निबन्ध में कला की उत्पत्ति का इतिहास बताते हुए कालिका पुराण का श्लोक बताते हैं -

उदीरितेंद्रियो धाता वीक्षांचक्रे यदार्यताम्।
तदैव ऊनपंचाशद् भावा जाताः शरीरतः।।
बिब्बोकाद्यास्तथा हावश्चतुः षष्टि कलास्तथा।
कंदर्पशरविद्वायाः संध्याया अभवन् द्विजाः।[३]

इन कलाओं के उत्पत्ति की एक रोचक कथा है। ब्रह्मा ने प्रजापति

---

१. तंत्रालोक, पृ०-२५
२. वृहत्संहिता भूमिका, पृ०-९ (वृहज्जातक)
३. कालिका पुराण, २, २८-२९

और मानसोत्पन्न ऋषियों को पैदा किया और उसके बाद सांध्या नामक एक कन्या को जन्म दिया। इन लोगों के बाद ब्रह्मा ने सुप्रसिद्ध मदन देवता को उत्पन्न किया, जिसे ऋषियों ने मन्मथ नाम दिया। इस देवता को ब्रह्मा ने वर दिया कि तुम्हारे बाँके लक्ष्य से कोई बच नहीं सकेगा, इसलिए तुम अपनी इस त्रिभुवन-विजयी शक्ति से सृष्टि रचना में मेरी मदद करो। मदन देवता ने वरदान और कर्त्तव्य भार दोनों को शिरसः स्वीकार किया। प्रथम प्रयोग उन्होंने ब्रह्मा और सांध्या पर ही किया। परिणाम यह हुआ कि वे दोनों प्रेम पीड़ा से अधीर हो उठे। उन्हीं के प्रथम समागम के समय ब्रह्मा के ४९ भाव तथा सांध्या के बिब्बोक आदि हाव और ६४ कलायें हुईं। कला की उत्पत्ति का यही इतिहास है।

दंडी जैसे अलंकारिको ने स्वीकार किया है कि कवित्त्व शक्ति यदि क्षीण भी हो तो भी कोई बुद्धिमान व्यक्ति यदि काव्य शास्त्रों का अभ्यास करे तो वह राजसभाओं में सम्मान पा सकता है।

न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबंधि प्रतिभामनद्भुतम् ।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्।।
तदस्ततद्रैरनिशं सरस्वती श्रमादुपास्या खलु कीर्तिमीप्सुभिः।
कृशे कवित्वेऽपि जनः कृतभ्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्त्तुमीशते।।[1]

इस सन्दर्भ के माध्यम से हजारी प्रसाद अपने काव्य कला नामक निबंध में काव्य कैसा होना चाहिए जो राज्य सभाओं और गोष्ठी समाज में कीर्तिशाली बना सकता है का प्रतिपादन किया है।

यस्तु प्रकृत्याश्मसमान एवं कष्टेन वा व्याकरणेन नष्ट।
तर्केण दग्धोऽनलधूमिना वाऽप्य विद्धकर्णः सुकविप्रबंधैः।।
न तस्य वक्तृत्व समुद्भवः स्याच्छिक्षाविषैरपि सुपुयुक्तैः।
न गर्दभो गायति शिक्षितोऽपि संदर्शितं पश्यति नार्कमन्धः।।[2]

१. काव्यादर्श, १, १०४-५
२. कविकण्ठाभरण १-२३

यह श्लोक कविकण्ठाभरण का है जिसका अभिप्राय है-प्रतिभा न होने पर काव्य सिखाया नहीं जा सकता। विशेषकर उस आदमी को तो किसी प्रकार कवि नहीं बनाया जा सकता, जो स्वभाव से पत्थर के समान है, किसी कष्टवश या व्याकरण के निरन्तर अभ्यासवश नष्ट हो चुका है या तर्क की आग से झुलस चुका है या सुकवि जन के प्रबन्धों को सुनने का मौका ही नहीं पा सका है। ऐसे व्यक्ति को तो कितना भी सिखाया जाय कवि नहीं बनाया जा सकता है क्योंकि कितना भी सिखाओ, गधा गान नहीं कर सकेगा, और जितना भी दिखाओ, अंधा सूर्य को नहीं देख सकेगा। द्विवेदी जी इसको स्वीकारते हुये **''काव्य कला''** नामक निबन्ध में कहते हैं कवित्व सिखाने वाले ग्रन्थों का यह दावा तो नहीं है कि वे गधे को गाना सिखा देगें, परन्तु यह दावा अवश्य करते हैं कि जिस व्यक्ति में थोड़ी सी भी प्रतिभा है उसकी काव्य कला निखारी जा सकती है-

रुपं वर्णः प्रभा रागः अभिजात्य विलासिता ।
लावण्यं लक्षणं छाया सौभाग्यं चेत्यमी गुणाः।।[1]

द्विवेदी जी इस श्लोक के माध्यम से अपने निबन्ध में बता रहे है कि शरीर के अवयवों की रेखाओं की स्पष्टता को रुप कहते हैं। गौरता, श्यामता आदि को वर्ण कहते हैं, सूर्य की भाँति चमकवाली कांति को प्रभा कहते हैं, अधरों पर स्वाभाविक हँसी, खेलते रहने के कारण सबकी दृष्टि को आकर्षित करने वाले धर्म विशेष को राग कहते हैं, फल के समान मृदुता और स्पर्श-सुकुमारता को अभिजात्य कहते हैं, अंगों और उपांगों से युवावस्था के कारण फूट पड़ने वाली विभ्रम विलास नामक चेष्टायें जिनमें कटाक्ष भुजाक्षेप आदि का समुचित योग रहता है, विलासिता कहलाती हैं; चन्द्रमा की भाँति आह्लाद कारक सौन्दर्य का उत्कर्षभूत, स्निग्ध मधुर धर्म, जो अवयवों के उचित सन्निवेष जन्म मुग्धिमा से व्यंजित होता है, लावण्य कहा जाता है, अंगों-उपांगों की असाधारण शोभा और प्रशस्तता का कारण भूत औचित्यमय स्थायी धर्म लक्षण कहा जाता है, वह सूक्ष्म भंगिमा जो अग्राम्यता

१. सहृदय लीला ग्रंथ ७.४३२

के कारण वक्रिमत्वख्यापिनी होती है, अर्थात वाह्य शिष्टाचार, विभ्रम विलास और परिपाटी को प्रकट करती है, जिससे तांबूल-सेवक, वस्त्र परिधान, नृत्तसुभाषित आदि में वक्ता का उत्कर्ष प्रकट होता है, छाया कहलाती है, सुभग उस व्यक्ति को कहते हैं जिसमें स्वभावतः वह रंजक गुण होता है जिससे सहृदयजन उसी प्रकार स्वयमेव आकृष्ट होते हैं जिस प्रकार पुष्प के परिमल से भ्रमर आकृष्ट होते हैं। इस प्रकार सुभग के आंतरिक वशीकरण धर्म-विशेष को सौभाग्य कहते हैं।[१]

इसके अतिरिक्त दश स्वभाव अलंकार भी होते हैं जो दशरूपक आदि ग्रंथ में इस प्रकार वर्णित हैं।

काव्यकला

यौवन में सत्व से उत्पन्न होने वाले स्त्रियों के बीस अलंकार होते हैं।

यौवने सत्वजाः स्त्रीणामलंकारास्तु विंशतिः।
भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः।।[२]

(१) भाव (२) हाव (३) हेला। ये तीन शरीरज अलंकार हैं।

अयत्नज-

शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता।
औदार्यधैर्यमित्येते सप्त भावा अयत्नजाः ।।[३]

(१) शोभा (२) कान्ति (३) दीप्ति (४) माधुर्य (५) प्रगल्भता (६) औदार्य और (७) धैर्य, ये सात भाव अयत्नज अलंकार हैं।

स्वभावज-

(१) लीला, विलास, विच्छित्ति आदि।

भाव- उस निर्विकारात्मक सत्व से जो प्रथम विकार होता है, वह भाव कहलाता है। वह उसी प्रकार शरीर में विद्यमान रहता है जिस प्रकार बीज के अंकुरित होने से पहले फुलावट। कुमारसम्भव के इस श्लोक को देखें-

१. अशोक के फूल पृ०-१०८
२. दशरुपक, द्वितीय प्रकाश, ३०
३. दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, ३१

हरस्तु किञ्चित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रो दयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे विम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।।

हाव-

उभरा हुआ रतिभाव, जो आँखों तथा भौंह इत्यादि कुछ अंगों में विकार उत्पन्न करता है; हाव कहलाता है, यथा-

यत्किमपि प्रेक्षमाणानां भणमानां रे यथा तथैव।
निर्ध्याय स्नेहमुग्धां वयस्य मुग्धां पश्य ।।

हेला-

हाव जब स्पष्ट रूप से रतिभाव का सूचक होता है तो हेला कहलाता है, यथा-

तथा झटित्यस्याः प्रवृत्ताः सर्वाङ्गं विभ्रमाः।
स्तनोद्भेदे संशयितबालभावा भवति चिरं यथा सखीनामपि।।

अयत्नज अलंकार-

१. शोभा- रूप, उपभोग और तारुण्य के द्वारा अंगों का सौन्दर्य बढ़ जाना ही शोभा कहलाती है, यथा -

तां प्राङ्मुखीं तत्र निवेश्य बालांक्षणं व्यलम्बन्त पुरो निषण्णाः।
भूतार्थशोभास्त्रियमाणनेत्राः, प्रसाधने सन्निहितेऽपिनार्यः।।[१]

एवं

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै
रनाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिवं च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।[२]

२. कान्ति- जब काम भाव के द्वारा उस शोभा की द्युति बढ़ जाती है तो वही कान्ति कहलाती है, जैसे- बाणभट्ट द्वारा महाश्वेता वर्णन के अवसर पर कान्ति प्रकट होती है।

१. कुमारसम्भव, ७-१७
२. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, २.११

३. माधुर्य- सब अवस्थाओं में रमणीयता ही माधुर्य है। ना०शा० २२.२९वें श्लोक के अनुसार माधुर्य का लक्षण है-

सर्वावस्था विशेषेषु दीप्तेषु ललितेषु च।
अनुल्वणत्वं चेष्ट्या माधुर्यमिति संश्रितम्।।

४- दीप्ति- कान्ति का विस्तार ही दीप्त कहलाता है।

प्रसीद पश्य निर्वर्तस्व मुखशशि ज्योत्स्ना विलुप्ततमो निवहे।
अभिसारिकाणां विघ्ने करोष्यन्यासामपि हताशे।।

५- प्रागल्भ्य- क्षोभादि रहित होना ही प्रागल्भ्य कहलाता है। अभिनवगुप्त के अनुसार प्रयोग का अभिप्राय है,६४ कामकला। ना०शा० २२.३१वें श्लोक को देखें-

'प्रयोगनिस्साहसता प्रागल्भ्यं समुदाहृतम्'।

६- औदार्य- सभी अवस्थाओं में (सदा) विनम्र रहना ही औदार्य कहलाता है। गाथा सप्तशती, ३२६वें श्लोक को देखें-

दिवसं खलु दुःखिताया सकलं कृत्वा गृहव्यापारम् ।
गुरूण्यपि मन्युदुःखे भरिमा पादान्ते सुप्तस्य।।

७- धैर्य- चंचलता से रहित तथा आत्मश्लाघा से शून्य चित्त वृत्ति धैर्य कहलाती है। मालती माधव २.२ संख्या के श्लोक को देखें-

ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलःशशा
दहतु मदनः किंवा मृत्योः परेण विधास्यति।
मम तुदयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया
कुलममलिनं न त्वेवायं जनो न च जीवितम्।।

दस स्वभाव अलंकार-

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोकोललितं तथा।
विहृतं चेति विज्ञेया दशभावाःस्वभावजाः।।[1]

अर्थात् लीला, विलास, विच्छिन्ति, विभ्रम, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित, विहृत ये दश भाव स्वाभाविक समझने चाहिये।

१. दशरूपक, २.३२, ३३

१- लीला- मधुर अंग चेष्टाओं द्वारा प्रियतम का अनुकरण करना ही लीला कहलाती है। अर्थात् प्रियतम् की बोली तथा वेष-भूषा आदि की जो श्रृंगार सम्बन्धी चेष्टायें हैं उनका अंगनाओं के द्वारा अनुकरण किया जाना ही लीला है। नाट्य शास्त्र २२.१४ एवं साहित्य दर्पण ३.९८.९९ में भी इसी प्रकार का लक्षण है। निम्न श्लोक धनिक की स्वयं की गाथा है-

दिट्ठं तह भणिअं ताए णिअदं तहा तहासीणम्।
लवलाइस सइण्हं सविब्भमं जह सवत्तीहि।।१५८।।

२- विलास- प्रिय के दर्शन आदि के अवसर पर नायिका के अंग चेष्टा तथा वचनों में जो एक विशेषता आ जाती है वही विलास कहलाता है, यथा मालतीमाधव १.२९ में देखें-

अत्रान्तरे किमपि वाग्विभवातिवृत्त-
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममायताक्ष्याः
तद्भूरिसात्विक विकारविशेषरम्य-
माचार्यकं विजयि मन्मथमाविरासीत्।।

३- विच्छित्ति- यदि थोड़ी सी वेश रचना शोभा को बढ़ा देती हे तो वहाँ विच्छत्ति नामक भाव होता है। अभिनवगुप्त के अनुसार विच्छित्ति का निमित्त सौभाग्य का गर्व होता है। यथा-

कर्णार्पितो रोध्रकषायरूक्षेगोरोचनाभेदनितान्तगौरे।
तस्याः कपोले परभागलाभाद्वन्ध चक्षूंषि यवप्ररोहः।।[1]

४- विभ्रम- प्रिय के आगमन आदि के समय शीघ्रता के कारण आभूषणों के स्थान का उलट फेर हो जाना विभ्रम कहलाता है। यथा-

अभ्युद्गते शशिनि पेशलकान्तदूती-
संलापसंवलित लोचनमानसाभिः।
अग्राहि मण्डन विधिर्वित्परीतभूषा-
विन्यासहासित सखीजनमंङ्गनाभिः।।

१. कुमारसम्भव, ७.१७

५- **किलकिञ्चित-** क्रोध, अश्रु, हर्ष तथा भय इत्यादि का एक साथ होना (संकर) किलकिञ्चित कहलाता है-

रतिक्रीडाद्यूते कथमपि समासाद्य समयं
मया लब्धे तस्याः क्वणितकलकण्ठार्धमधरे
कृतभ्रूभंगासौप्रकटित विलक्षार्धरूदित-
स्मित क्रोधोद्भ्रान्तं पुनरपि विदध्यान्मयि मुखम्।।

६- **मोट्टायित-** प्रियतम की चर्चा इत्यादि के अवसर पर उस (प्रिय) के भाव में मग्न हो जाना मोट्टायित कहलाता है। जैसे पद्मगुप्त का पद-

चित्रवर्तिन्यपि नृपे तत्वावेशेन चेतसि।
व्रीडार्धवलितं चक्रे मुखेन्दुमवशैव सा।।

७- **कुट्टमित-**(रति क्रिया में प्रियतम के द्वारा) केश और अधर को ग्रहण किये जाने पर नायिका जो हृदय में प्रसन्न होकर भी कोप प्रकट करती है, वही कुट्टमित कहलाता है।

नान्दीपदानि रतिनाटक विभ्रमाणा।
माज्ञाक्षराणि परमाण्यथवा स्मरस्य।।
दृष्टेऽधरेप्रणयिना विधुताग्रपाणेः
सीत्कारशुष्करूदितानि जयन्ति नार्याः।।

८- **विव्वोक-** गर्व और अभिमान के कारण इष्ट वस्तु के प्रति भी अनादर दिखलाना बिब्बोक कहलाता है।

९- **ललित-** सुकुमार अंगों को स्निग्धतापूर्वक चलाना ललित कहलाता है।

१०- **विहृत-** जो अवसर आने पर भी (नायिका) लज्जा के कारण नहीं बोलती, वह विहृत है। द्विवेदी जी अपने **काव्य कला** नामक निबन्ध में लिखते हैं कि ब्रज, मुक्ता, पद्मराग, मरकत, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुष्पराग का केतन पुलक, रुद्राक्ष, भीष्म, स्फटिक, प्रवाल, ये तेरह रत्न होते हैं।[१] वाराहमिहिर की बृहत्संहिता में

१. व्रजेन्द्रनीलमरकत कर्केतनपद्मरागरुधिरराख्या।
वैदूर्यपुलकविमलकराजमणिस्फटिकशशिकान्ता।।

इनके लक्षण इस प्रकार दिये हैं। शुभरत्न धारण करने से राजाओं का कल्याण होता है, अशुभ रत्न धारण करने से अशुभ होता है, इसी कारण रत्न जानने वाले पंडितों को रत्नाश्रित देव की परीक्षा करनी चाहिए। वेणानदी के किनारे पर ही शुद्ध हीरा उत्पन्न होता है, शिरीष पुष्प के समान हीरा शोशल देश में उत्पन्न होता है, कुछेक लाल रंग का हीरा सुराष्ट्र (सूरत) देश में उत्पन्न होता है, काले रंग का हीरा सूरपारक देश में उत्पन्न होता है। हिमवान् पर्वत पर उत्पन्न हुआ हीरा लाल रंग का होता है, वल्ल के फूल के समान हीरे का मतगंज नाम है। कुछेक पीले रंग का हीरा कलिंग देश में उत्पन्न होता है। पौण्ड्र देश में उत्पन्न हुआ रत्न श्याम रंग का होता है। छः कोणवाले हीरे का इन्द्र देवता होता है, शुक्ल वर्ण के हीरे का यम देवता होता है, सर्पकार मुखवाले, काले या कदली के काण्ड की नाई रंग वाला हीरा विष्णु दैवत है। स्त्री के भय के समान आकार वाला हीरा वारूण होता है, यह कर्णिकार के पुष्प के समान भी होता है। सिंघाड़े के समान या व्याघ्र के नेत्र के समान हीरे का देवता अग्नि है। 'अशोक के फूल' के समान या व्याघ्र के नेत्र के समान हीरे का देवता अग्नि है। 'अशोक के फूल' समान रंग वाले या जौ के समान समस्त हीरे का वायव्य नाम है। नदी आदि के प्रवाह, खान और पीले रंग का हीरा क्षत्रियों को शुभदायी है, श्वेत रंग का हीरा ब्राह्मणों को शुभकारी है, शीरीष सुमन के समान हरे रंग का हीरा वैश्यों को और खंग के समान नीले रंग का हीरा शूद्रों को शुभ फल देता है। श्वेत सरसों के आठ दानों के समान एक चावल होता है ऐसे बीस चावल भर जो हीरा तौल में हो उसका मूल्य लाख रुपया होता है। जो दो चावल भर हो तो क्रमानुसार पहले कहे हुये मूल्य का पाद, तिहाई, आधा, त्रिभागयुक्त पाँचवाँ अंश, सोलहवाँ अंश, पच्चीसवाँ अंश, सौवाँ अंश और सहस्त्रवाँ अंश मोल होगा। जो हीरा किसी वस्तु से न टूटे, साधारण जल में भी किरण के समान तैरता रहे, स्निग्ध और बिजली, अग्नि व इन्द्र धनुष के समान रंगवाला हो वह हितकारी होता है।

मुक्ता परीक्षा-

हाथी, सर्प, सीपी, शंख, बादल, बांस और मत्स्य से मोती उत्पन्न होती

है, उन सबमें सीपी से निकला हुआ मोती ही अत्यन्त श्रेष्ठ होता है।

पद्म परीक्षा-

सौगंधिक कुरूवन्दि और स्फटिक इन तीन भाँति के पत्थरों से पद्मराग का जन्म होता है। स्निग्ध अपनी प्रभा से चमकता हुआ, स्वच्छ, कांतिमान, भारी शुभ आकार वाला भीतर ही कान्ति से युक्त और बहुत रंग वाला यह समस्त पद्मराग मणि श्रेष्ठ गुण से युक्त होता है। इसी प्रकार अन्य रत्नों की भी परीक्षा होती है।

'नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय'।[१]

यह मंत्र यजुर्वेद का है जिसका प्रयोग हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने उपजीव्य रूप में किया, 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' निबन्ध में वर्णित किया गया है-

उर्ध्वबाहु विरौम्येष नैव कश्चिच्छ्रिणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्म किं न सेव्यताम्।[२]

महाभारत के स्वर्ग पर्व में व्यास देव अंतिम जीवन में निराश होकर कहते हैं कि मैं भुजा उठाकर चिल्ला रहा हूँ कि धर्म ही प्रधान वस्तु है उसी से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है पर मेरी कोई सुन नहीं रहा है इसी को संदर्भित कर द्विवेदी जी अपने निबन्ध मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है में कहते है कि अच्छी बात करने वालों की कमी इस देश में कभी नहीं रही है। आज भी बहुत ईमानदारी और सच्चाई के साथ अच्छी बात करने वाले आदमी इस देश में कम नहीं है।

नारद ने शुकदेव से शांति पर्व में कहा था कि सत्य बोलना अच्छा है पर हित बोलना और भी अच्छा है। मेरे मत से सत्य वह है, जो भूत मात्र के आत्यंतिक कल्याण का हेतु हो-

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्भूतहितमत्यंतमेतत् सत्यं मतं मम्।।[३]

१. अशोक के फूल, पृ०-१५३
२. महाभारत स्वर्ग पर्व, ५.६२
३. महाभारत शांतिपर्व, ३२९-१७

इसका उल्लेख करते हुये द्विवेदी जी 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है' निबन्ध में कहते हैं कि सर्वभूत का आत्यंतिक कल्याण ही साहित्य का चरम लक्ष्य है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी जी अपने निबन्ध 'नया वर्ष आ गया है', के अंत में कहते हैं कि 'तुमसे यह गुप्त रहस्य की बात बताने जा रहा हूँ, मनुष्य से बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं है।' इसी बात का उल्लेख महाभारत के शांतिपर्व में मिलता है।

नाहं शप्तः प्रति शपामि कंचिद्।
दमं दारं ह्यमृतस्येह वेदिम्।।
गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि ।
न मनुष्यच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्।।[१]

यह महाभारत में सांध्या का कथन है, जिसका अभिप्राय है- कोई मुझे शाप दे दे तो भी मैं बदले में उसे शाप नहीं देता, इन्द्रिय संयम को ही मोक्ष का द्वार मानता हूँ। इस समय मैं तुम लोगों को एक बहुत गुप्त बात बता रहा हूँ, सुनो! मनुष्य से श्रेष्ठ कोई चीज नहीं है। दैवज्ञलक्षण, आदित्यचार, चन्द्रचार, राहुचार, भौमचार, बुधचार, वृहस्पतिचार, शनैश्चराचार, शुक्रचार, केतुचार, अगस्तचार, सप्तर्षिचार, कूर्मविभाग, नक्षत्रव्यूह, ग्रहभक्ति, ग्रहयुद्ध, चन्द्रग्रहसमागम, ग्रहवर्षफल, ग्रहश्रृंगाटक, गर्भलक्षण, गर्भधारण, प्रवर्षण, रोहिणी योग, स्वातियोग, आषाढ़ी योग, बातचक्र, सद्योवृष्टिलक्षण, कुसुमलता, संध्यालक्षण दिग्धाहलक्षण भूमिकम्पलक्षण, उल्कालक्षण, परिवेषलक्षण, इन्द्रायुधलक्षणं, गंधर्वनगरलक्षणं, प्रतिसूर्यलक्षण, रजोलक्षण, निर्घातलक्षण, शव्यजातक, द्रव्यनिश्चय, अर्धकाण्ड, इन्द्रध्वजसम्पत्, नीरांजनविधि, खंजनदर्शन, उत्पातलक्षण, मयूरचित्रक, पुष्यस्नान, पट्टलक्षण, बज्रलेप, प्रतिमालक्षण, वनसंप्रवेश, प्रतिमाप्रतिष्ठा, गोलक्षण, श्वानलक्षण, कुक्कुटलक्षण, कूर्म्मलक्षण, छागलक्षण, अश्वलक्षण, गजलक्षण, पुरुषलक्षण, पंचमहापुरुष, स्त्रीलक्षण, वस्त्रछेदलक्षण, चामरलक्षण, छत्रलक्षण, अन्तःपुरचिंता, स्त्रीप्रशंसा, सौभाग्यकारण, बज्रपरीक्षा, मुक्ताफलपरीक्षा, पद्मरागपरीक्षा, मरकरतपरीक्षा, दीपलक्षण, दंतकाष्ठलक्षण,

१. महाभारत, आदिपर्व, श्लोक -१९

शकुन मिश्रफलाध्याय, शकुन अंतरचक्र, पाक विचार, नक्षत्र गुण, तिथि और करणगुण, वैवाहिक नक्षत्र और लग्न नक्षत्र जातक राशि विभाग, विवाह पटल, गोचर फल, नक्षत्र पुरुष ब्रत आदि ज्योतिष शास्त्र के व्याख्येय विषय हैं।[१] जिनमें मुख्य विषयों का प्रतिपादन हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने निबन्ध संग्रह 'अशोक के फूल' में संकलित कर भारतीय फलित ज्योतिष में प्रतिपादित किया है।

महाभारत के आदि पर्व में द्रुपद ने अर्जुन को शुभ मुहुर्त में विवाह करने का आदेश दिया था जो इस श्लोक से ज्ञात होता है-

ग्रहणातु विधिवत्पाणिमद्यैव कुरुनन्दनः।
पुण्ये अहानि महावाहुरर्जनः कुरुतां क्षणम्।।

परन्तु हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय फलित ज्योतिष में लिखते हैं। द्रुपद ने युधिष्ठिर को शुभ मुहुर्त में विवाह करने का आदेश दिया था, जबकि ऐसी बात नहीं है। हजारी प्रसाद जी भारतीय फलित ज्योतिष के सन्दर्भ में कहते हैं कि जब पूर्व-जन्म का कर्म-फल ही इसी जन्म में पाना है और वह पाना होगा ही, तो भाग्य-निर्णय का बावेला कैसा ? तो वृहद् जातक टीका के इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि पूर्व जन्म में जो शुभाशुभ कर्म किया गया है, उसके फल को यह शास्त्र उसी तरह व्यक्त कर देता है जिस तरह अंधकार में प्रदीप-

येन यत्प्राप्तव्यं तस्य विपाकः सुरेशतवोऽपि।
यः साक्षान्नियतिज्ञः सोऽपि न शक्तोऽन्यथाकुर्तुम्।।

द्विवेदी जी 'भारतीय फलित ज्योतिष' निबन्ध में आषाढ़ी योग के दिन जब सूर्य अस्त होता है तो उस समय क्या होता है? इसका वर्णन वृहद्संहिता के आधार पर करते हैं। वृहद्संहिता में इसका उल्लेख इस प्रकार है-

पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचि शिखर प्रस्फलानाघूर्णित-

१. वृहत्संहिता, अनुक्रमणिका

श्चन्द्रांकाशुसटाभिघातकलितोवा- युर्यदाकाशतः।
नैकान्तस्थितनीलमेघपटलां शारद्यसंवर्धितां
वासन्तोत्कटसस्यमण्डिततला विद्यातदा मेदिनीम्।।[१]

अर्थात्- आषाढ़ी योग के दिन जब सूर्य अस्त हो तब आकाश से पूर्वार्द्ध पवन पूर्व समुद्र के तरंग शिखर को स्पर्श करता हुआ, घूमता हुआ और चन्द्रमा सूर्य के किरणरूप जटा के अभिघात से बंध जाता है तब समस्त पृथ्वी एकान्त में स्थित नीले बादलों के समूहों से और वृद्धि को प्राप्त हुये शरद ऋतु के फल धान्य से युक्त होकर समस्त वासन्ती धान्य से शोभायमान हो जाती हैं।

यही नहीं द्विवेदी जी और भी लिखते हैं-

सूर्य के अस्त हो जाते समय जब नैर्ऋत्य कोण की हवा छोटी इलायची और लवंग तालिकाओं को समुद्र तट पर लोट पोट करादे तो भूख प्यास के मारे मृत मनुष्य के हड्डियों के टुकड़े और तृण गुच्छ के भार से ढंकी पृथ्वी उन्मत्त प्रेत बधू की तरह दृष्ट होगी, यथा-

सूक्ष्मैं लालवली लवंग निचयान् व्याघूर्णयन् सागरे
भानोरस्तमये प्लवत्य विरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः।
क्षुत्तृष्णामृतमानुषास्थिशकल प्रस्तारभारच्छदा
मत्ता प्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते।।[२]

द्विवेदी जी लिखते है, बरसात के सिवा अन्य ऋतु में लगातार सात दिन तक वर्षा होती रही तो सम्राट के मरण की आशंका होगी-

शीतोष्णविपर्यासे नो सम्यगृतुषु च सम्प्रवृत्तेषु।
षण्मासाद्राष्ट्रभयं रोग भयं दैवजनितं च।।[३]

शीत और ग्रीष्म में अदल बदल होने से, सब ऋतुओं का बर्ताव भली-

१. उत्पलभट्ट, बृहद्जातक की टीका
२. वृहत्संहिता, ७.४
३. वृहत्संहिता, उत्पात लक्षण, श्लोक-३९

भाँति न होने से छः मास तक दैवभय, राज्यभय और रोगभय हुआ करता है। यही नहीं और भी-

अन्यतौं सप्ताहं प्रबन्धवर्षे प्रधाननृपमरणम्।
रक्ते शस्त्रोद्योगो मांसास्थिवसादिभिर्मरकः।।[१]

निष्कर्ष-

हिन्दी निबन्ध सम्राट श्री पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का सम्पूर्ण साहित्य संस्कृत के उपजीव्यों के सन्दर्भों से भरा पड़ा है। उनके निबन्धों को पढ़कर बहुत आश्चर्य होता है कि द्विवेदी जी के पास इतना समय कहाँ से आता था कि वे सम्पूर्ण वाङ्मय का अध्ययन कर उनके सारे तत्वों को अपने मस्तिष्क में एकत्रित कर और लेखन करते समय सूक्ति रूप में प्रयोग करते रहे। मुझे आज उनके इस संस्कृत साहित्य के सन्दर्भों को ढूँढ़कर लिखते समय बड़ा आश्चर्य और खुशी हो रही है कि मैं इतना कठिन कार्य किस प्रकार पूरा कर सकी। मुझे इन सन्दर्भों जो संस्कृत के नाटक, उपनिषद्, पुराण, वेद, ज्योतिष, महाभारत, रामायण आदि की पुस्तकों को ढूँढने और उनका इतने कम समय में अध्ययन कर सकी; शायद इसके पीछे किसी की प्रेरणा रही हो। आचार्य द्विवेदी जी के संस्कृत सम्बन्धी उपजीव्य के सन्दर्भ बहुत ही सरस एवं प्रेरणादायक या ज्ञानवर्धक हैं।

★ बंगला भाषा एवं साहित्य के उपजीव्य एवं सन्दर्भ

हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने निबन्ध संग्रह में वर्णित 'रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गान' में लिखते हैं कि रवीन्द्रनाथ सुर की धारा में एक अपूर्व पावनी शक्ति का अनुभव करते हैं। अपने परमाराध्य को पुकारकर वे पुंचशती में कहते हैं जिसे द्विवेदी जी ने अपने निबन्ध में उल्लिखित किया है-★

श्राबोनेर धारार मॅतो पोड़ुक झोरे पोड़ुक झोरे,
तोमारि शुरटी आमार मुखेर पॅरे, बुकेर पॅरे।

१. वृहतसंहिता, उत्पात लक्षण, श्लोक-४०

★ बंगला गीत उच्चारण की सुविधा के साथ प्रस्तुत है। यथा- स = श
व = ब, य = ज

पूरोवेर ऑलोर शाथे पोड़ुक प्रातेदुयी नॅयाने-
निशीथेर ऑन्धोकारे गोभिरधारे पोड़ुक प्राने
निशीदिन ऐई जीबोने शुखेर पॅरे दुखेर पॅरे
श्राबोनेर धारार मॅतो पोड़ुक झोरे पोड़ुक झोरे।
जे शाखाय फूल फोटे ना फॅलधॅरे ना ऐकेबारे।
तोमार ओई बादोल बाये दिक जागाये शेई शाखारे।
जा किछु जीर्णो आमार दीर्णो आमार जीबोनहारा
ताहारि स्तॅरे-स्तॅरे पोड़ुक झोरे शुरेर धारा
निशिदिन ऐई जीबोनेर तृशार पॅरे भूखेर पॅरे
श्राबोनेर धारार मॅतो पोड़ुक झोरे पोड़ुक झोरे।[१]

इसका अर्थ है, तुम्हारे सुर की धारा मेरे मुख और वक्षःस्थल पर सावन की झड़ी के समान झड़ पड़े। उदयकालीन प्रकाश के साथ वह मेरी आँखों पर झड़े, निशीथ के अंधकार के साथ यह गम्भीर धारा के रुप में मेरे प्राणों पर झड़े, दिन-रात वह इस जीवन के सुखों और दुःखों पर झड़ती रहे। तुम्हारे सुर की धारा सावन की झड़ी के समान झड़ती रहे। जिस शाखा पर फल नहीं लगते, फूल नहीं खिलते उस शाखा को तुम्हारी यह बादल-हवा जगा दे। मेरा जो कुछ भी फटा-पुराना और निर्जीव है, उसके प्रत्येक स्तर पर तुम्हारे सुखों की धारा झड़ती रहे, दिन रात इस जीवन का भूख पर और प्यास पर वह सावन की झड़ी के समान झड़ती रहे।

ओरे तोरा नेई वा कथा बोल्लि (बोल्ली)
दॉड़िये हाटेर मध्यिखाने नेई जागालि पोल्ली
मरिस् मिथ्ये बोके झोके, देखे केबल हाशे लोके,
नाहय निये आपॅन मनेर आगुन मने मनेई ज्वललि-
अंतरे तोर आछे की जे नेई रटालि निजे-निजे,
ना हय, वाद्य गुलो बंधो रखे चुपचापेइ चोल्लि-
काज थाके तो कॅरगे ना काज लाज थाके तो घुचागे लाज
क जे तोरे की बोलेछे नेइ वा तातै टोल्लि[२]

१ . गीतिमाल्य, ६. पृ. १४६

२. स्वदेश, गीत संख्या २७

द्विवेदी जी का इस निबन्ध में इसे जोड़ने का प्रयोजन यही है कि जो लोग सेवा करना चाहते हैं उन्हें चुपचाप सेवा में लग जाना चाहिए, जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ ने ग्रामोद्धार करने वालों को लक्ष्य करके उपरोक्त पद को गाया था जिसका अभिप्राय है 'अरे भाई क्या बिगड़ गया यदि तूने कोई बात नहीं कही, बाजार में खड़े होकर अगर तुमने ग्रामों को जगाने का काम नहीं ही किया तो क्या हो गया। बेकार वकवास करके मर रहे हो देखकर लोग केवल हँसते हैं, अपने मन की आग से तुमने मन ही मन जला लिया तो क्या बुरा हुआ। क्या हुआ जो तुमने गाँवों को नहीं जगाया। तुम्हारे मन में क्या है जो तुमने खुद-व-खुद चिल्लाकर नहीं कहा तो क्या बिगड़ गया। काम बन्द करके और चुपचाप ही चल दिये तुम। अरे भाई, तुमने ग्रामोद्धार नहीं ही किया।'

'यदि कुछ काम हो तो जाओ न, उसे करो, यदि तुम्हारे भीतर कहीं लाज हो तो जाओ न, सबकी लाज बचाओ। अरे भाई, किसने तुम्हे क्या कहा है, इस बात से तुम वहीं ही विचलित हुये तो क्या हो गया, न हुआ, तुमने ग्रामोद्धार नहीं ही किया।'

द्विवेदी जी लिखते हैं कि रवीन्द्रनाथ की स्वदेश भक्ति भगवान की विरोधिनी नहीं थी। उनके ऐसे बहुत से थोड़े गान हैं, जिन्हें निश्चित् रूप से स्वदेश भक्ति के गान कहा जा सकता है, नहीं तो साधारणतः राष्ट्रीय गानों के रुप में प्रचलित उनका ऐसा शायद ही कोई गान हो, जो भक्ति और साधना के अन्यान्य क्षेत्रों में व्यवहृत न हो सकता हो। रवीन्द्रनाथ के सभी गान सार्वभौम हैं। उन्होंने साधक को पुकार करके कहा है जिसे द्विवेदी जी ''गीत वितान'' में वर्णित करते हैं साथ ही निबन्ध रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गान में संकलित किया है जो इस प्रकार है-

(यदि) जोदि तोर डाक शुने केउ न आशे तबे एक्ला चलो रे।
ऐक्ला चलो, ऐक्ला चलो, ऐक्ला चलो रे।।
जोदि केऊ कथा ना कॅय - ओरे ओरे ओ अभागा
जोदि शवाई थाके मुख फिराये, शवाई कॅर भॅय-

तॅबे परान खुले,
ओ तुई मुख फुटे तोर मोनेर कॅथा, एक्ला बॅलो रे।।
जोदि शबाई फिरे जाय ओरे - ओरे ओ अभागा।
जोदि गॅहोन पथे जाबार काले केउ फिरे ना चाय
तबे पॅथेर कॉटा ओ तुई रॅक्तो माखा चरण तॅले एक्ला दलो रे।।
जोदि आलो ना धॅरे - ओरे ओ अभागा
जोदि झॅड़ बादोले आंधार राते दुआर देय घॉरे
तबे बज्रानॅले
आपन बुकेर पॉजर ज्वालिये निये एक्ला ज्वलो रे।।[1]

अर्थात्- यदि तेरी पुकार सुनकर कोई न आये तो तू अकेला ही चल पड़। अरे ओ अभागे, यदि तुमसे कोई बात न करे, यदि सभी मुँख फिरा ले, सब (तेरी पुकार से) डर जाये, तो तू प्राण खोलकर अपने मन की वाणी से अकेला ही बोल। अरे ओ अभागे, यदि सभी लौट जाये, यदि कठिन मार्ग पर चलते समय तेरी ओर कोई फिरकर भी न देखें, तो तू रास्ते के काँटों को अपने खून से लतपथ चरणों द्वारा अकेला ही रौंदता हुआ आगे बढ़। अरे ओ अभागे, यदि तेरी मशाल न जले और आंधी तूफान भरी अंधेरी रात में; तुझे देखकर सब लोग दरवाजा बन्द कर लें, तो फिर अपने हृदय पंजर को जलाकर तू अकेला ही जल। यदि तेरी पुकार सुनकर कोई तेरे पास न आये तो फिर अकेला ही चलता चल, अकेला ही चलता चल।

द्विवेदी जी कहते हैं यदि साधना के साथी मोहवश अपना सर्वस्व त्याग देने में जरा भी झिझकें तो पतन निश्चित् है। इसलिए रवीन्द्रनाथ ने स्वदेश-सेवा के साधकों को पुकार करके स्वदेश में लिखा है जिसे द्विवेदी जी अपने निबन्ध में वर्णित करते हैं।

जोदि तोर भावना थाके, फिरे जाना तबे तुई फिरे जाना।
जोदि तोर - भॅय थाके तो, कोरि माना।।

---

१. स्वदेश, गीत संख्या ३

जोदि तोर घुम जोड़िये थाके गाये, भूलबि जे पॅथ पाये-पाये,
जोदि तोर हात कॉपे तो निबिये आलो, शबाय कोरबि काना
जोदि तोर छाड़ते किछु ना चाहे मोन, कोरिश् भारी बोझा आपोन,
ताबे तुई शोइते कभु पारबि ने रे विषम पॅथेर टना
जोदि तोर आपोन होते अकारणे शुखशदाना जागे मोने,
तबै तुई तॅर्क कोरे शॅकोल कॅथा कोरबि नाना खाना [१]

अर्थात्- ''यदि भाई तुझे कुछ चिन्ता-फिकर है तो तू लौट जा। यदि तेरे शरीर में नींद लिपटी रहेगी तो तू पग-पग का रास्ता भूल जायेगा। यदि कहीं तेरा हाथ कॉप गया तो मशाल बुझाकर तू सबका रास्ता अंधकारमय कर देगा। यदि तेरा मन कुछ छोड़ना न चाहे और तू अपना बोझ बराबर बढाता ही गया तो इस कठिन रास्ते की मार तू बर्दाश्त नहीं कर सकेगा। यदि तेरे मन में अपने-आप (भीतर से) आनन्द नहीं जगता रहेगा तो तर्क पर तर्क करके तू सब कुछ तहस-नहस कर देगा। ना भाई, यदि तुझे कुछ चिन्ता फिकिर है तो तू लौट जा।''

द्विवेदी जी इस पद के माध्यम से कहते हैं कि हो सकता है कि इस प्रकार अकेले ही सच्चाई के मार्ग पर चलने वालों कों लोग शुरू-शुरू में पागल कहने लगें। शुरू-शुरू में किस महापुरुष को लोगों ने पागल नहीं समझा है। किस महापुरुष ने निर्यातन नहीं सहा है। रवीन्द्रनाथ ने कहा है-

जे तोरे पागल बोले, तारे तुइ बोलिस्ने किछु
आज के तोरे कैमोन भेवे ओंगे जे तोर धूलो देबे
काल शे प्राते माला हाते आश्बे रे तोर पिछु-पिछु
आज के आपोन मानेर भॅरे धाक शे वोशे गोदिर पॅरे
काल से प्रेमे आश्बे नेमे, कोरबे शे तार माथा नीचू [२]

१. स्वदेश, गीत संख्या २८
२. स्वदेश, गीत संख्या २६

अर्थात्- जो तुझे पागल कहे, उसे तू कुछ भी मत कह। आज जो तुझे कैसा-कुछ समझकर धूल उड़ाता है, वही कल प्रातःकाल हाथ में माला लिये तेरे पीछे-पीछे फिरेगा। आज चाहे वह मान करके गद्दी पर बैठा रहे, किन्तु कल निश्चय ही वह प्रेमपूर्वक नीचे उतरकर तुझे अपना शीश नवायेगा।

द्विवेदी जी अपने निबन्ध रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गान में लिखते हैं कि सत्य का प्रकाश-धर्म है जिसे वह छिपाया नहीं जा सकता है। लेकिन अनादिकाल से यह सर्वविदित सत्य है कि जिसे मदमत्त शक्तिशाली लोग असम्भव कहा करते हैं, वह वस्तुतः असम्भव नहीं हैं-

रोइलो बोले राखले कारे हुकुम तोमार फोलबे कॅबे
टानाटानि टिक्बे ना भाई, रॉबार जेटा शेटाई रॉबे
जा खुशि ताई कोरते पारो-गॉयेर जोरे राखो मारो-
जॉर गाये शॉब व्यथा बाजे तिनि जा शॉन शेटाई शॉबे
ॲनेक तोमार टाका कोड़ि ॲनेक दॅड़ा अनेक दोड़ि
ॲनेक अश्वो ॲनेक कोरी ॲनेक तोमार आछे भॅबे
भाब्छो हबे तुमिइ जा चाओ जॅगोत् टाके तुमिइ नाचाओ,
देखबे हठात् नॅयोन खुले, हॅय ना जेटा शेटाओ हॉबे [१]

अर्थात्- ''यह रह गया- ऐसा कहकर तुमने किसे बचा लिया। कब तुम्हारा हुक्म तामील हुआ है। अरे भाई, यह तेरी खींच-तान चलेगी नहीं, जो रहने को है वह सिर्फ वही रहेगा, तुम जो खुशी कर सकते हो, जबरदस्ती करके रखते रहो और मारते रहो, परन्तु उनके शरीर में सारी व्यथा लगती है, वे जो कुछ सहते हैं, उतना ही चल सकेगा। तुम्हारे बहुत रुपये पैसे हैं, टीम-टाम हैं, बहुत हाथी घोड़े हैं- दुनियाँ में तुम्हारी बहुत सम्पत्ति है। तुम सोचते हो कि जो तुम चाहोगे वही होगा, दुनियाँ को तुम्हीं नचा रहे हो। लेकिन जो कभी नहीं होता, वह भी हो गया।''

१. स्वदेश, गीत संख्या ३६

द्विवेदी जी कहते हैं निःसहाय अकेले निकल पड़ने में वीरता चाहे कितनी हो, क्या बुद्धिमानी भी है? जो लोग सत्य के मार्ग में चल रहे, उनका देखना भी श्रेयस्कर है, पर लक्ष्य तक नहीं पहुँचे तो सारी यात्रा ही व्यर्थ हो गयी, ऐसा विचार रवीन्द्रनाथ को पसन्द नहीं था, उन्होंने गाया है-

आमार नाइ वाह लो पारे यावा या हावाते चलतो तही
अगैते सेइ लगाई हावा। नेइ यदि वा जमलो पाहि,
घाट पाछे तो बसेत पारि आमार आशार तरी डुबलो यदि
देखबो तोदेर तरी वावा। हातेर काछे कोलेर काछे
या आछे सेई अनेक आछे आमार सारा दिनैर एइकिरे काज
ओपार पाने कैदे चावा। कम किछु मोर थाके हेथा
पूरिये नेवी प्राण दिये ता, आमार सेइखाने तोइ कल्पलता
ये खाने मोर दा बि-दावा[1]

''क्या हुआ जो मैं पार नहीं जा सकता। मेरी आशा की नैया डूब गयी तो हर्ज क्या है, वह हवा तो शरीर में लग रही है, जिससे नाव चल रही थी। तुम लोगों की चलती नाव देख रहा हूँ इसी में क्या कम आनन्द है। हाथ के पास अपने इर्द-गिर्द, जो कुछ पा रहा हूँ वही बहुत है। हमारा दिन-भर क्या यही काम है कि उस पार की ओर ताकता रहूँ। यदि कुछ काम है तो प्राण देकर उसे पूरा कर लूँगा। मेरी कल्पलता वही है जहाँ कुछ दावा है।''

''ओ अभागे मनुष्य। हो सकता है कि तेरे अपने ही लोग तुझे छोड़ दें, लेकिन इसकी चिन्ता करने से कैसे चलेगा। शायद तेरी आशा लता टूट जायेगी और उसमें फल नहीं फलेगा, इसलिए चिन्ता करने से कैसे चलेगा। तेरे रास्ते में अंधेरा छा जायेगा, पर इसलिए क्या तूँ रुक जायेगा। अरे ओ (अभागे) तुझे बार-बार बत्ती जलानी पड़ेगी और फिर शायद वह नहीं जलेगी।

लेकिन इसीलिए चिन्ता करने से कैसे चलेगा। तेरी प्रेम वाणी सुनकर

१. स्वदेश, गीत संख्या ३६

जंगली जानवर तक चले आयेंगे और फिर भी ऐसा हो सकता है कि तेरे अपने लोगों का पाषाण का हृदय न पिघले। तू लौट आयेगा कि सामने का दरवाजा बन्द है, न भाई, तुझे बार-बार ठेलना पड़ेगा और फिर हो सकता है कि दरवाजा हिले ही नहीं। लेकिन इसीलिए चिन्ता करने से कैसे काम चलेगा-

तोर आपोन जने छाड़बे तोरे
ता बोले भाबना कॅरा चोलॅबेना
ओ तोर आशालता पोड़बे छिड़े
हॅय तोरे फॅल फोलबे ना-
ऑशबे पॅथे आंधार नेमे ताइ बोलई की रॅइबी थेमे
ओ तुई बारे - बारे जॅलॅबी बाती
हॅय तो बाती जोलबे ना
शुने तोमार मुखेर बानी, (बाड़ी)
आश्बे घिरे बॅनेर प्रानी, (प्राणी)
हॅय तो तोमार आपोन घॅरे
पाषाण हिया गोलबे ना
बॅद्धो दुआर देखलि बोले
तोरे बारे - बारे ठेलते होबे
हॅयतो दुआर टोलबे ना[1]

द्विवेदी जी अपने निबन्ध रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रगान में कहते हैं कि फल आशा के प्रति निःस्पृह होने का अर्थ यह नहीं कि फल प्राप्ति के विषय में साधक का विश्वास न हो। वस्तुतः अखण्ड विश्वास के बिना निःस्पृहता आती ही नहीं। रवीन्द्रनाथ का एक पद देखें-

१. स्वदेश, गीत संख्या ४

निशिदिन भॅरशा राखिश ओर मॅन, हॅबेइ हॅबे।
जोदि पॅन कोरे थॉकिश, शेपोन तोमॉर रोबेइ रोबे।।
ओरे मोन हॅबेई हॅबे।।
पाषाण शामान आछे पोड़े प्रान पेयेशे उठबे पोरे
आछे जारा बोबार मोतॅन, तराओ कॅथा कोबेइ कॅबे।।
शॅमय होलो शॅमय होलो, जे जार आपोन बोझा तोलो रे,
दुःख जोदि माथायॅ् धोरिश, शे दुःखो तोर शबेई शबे
घोन्टा जॅखोन उठॅबे बेजे, देखबि शॅबाइ आशबे शेजे
ऐक्शाथे शॉब जात्री जॉतो ऐकई रॉश्ता लॉबेइ लॅब[१]

अरे ओ मन, सदा विश्वास रख कि काम होकर ही रहेगा। यदि तूने सचमुच प्रण ठान लिया है तो निश्चय ही तेरी प्रतिज्ञा रहेगी। वह जो तेरे सामने पाषाण की तरह पड़ा हुआ है, वह प्राण पाकर हिल उठेगा, जो गूँगे के भाँति पड़े हुये हैं- वे भी निश्चय ही बोलने लगेंगे। समय हो गया है, जिनके पास जो बोझ है वह उठा लो। मेरे मन यदि तूने दुःख को सिर माथे ले लिया है तो तेरा यह दुःख जरुर सह जायेगा। जब घंटा बज उठेगा, तो तू देखेगा कि सब लोग तैयार हैं और सभी यात्री एक साथ निश्चय ही एक रास्ते पर निकल पड़ेगें। मेरे मन, दिन रात यह विश्वास रख कि काम होकर ही रहेगा।

द्विवेदी जी यही नहीं और भी कहते हैं। दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति एक बार जिस काम को करने की ठान लेता है तो उसके मार्ग में कितनी भी कठिनाई क्यों न आये वह फिर रास्ते से पीछे नहीं हटता है। यथा रवीन्द्र जी लिखते हैं- ना मैं नहीं लौटूँगा, नहीं लौटूँगा। मेरी नैया अब ऐसी मनोहर हवा की ओर बह चली है, अब मैं किनारे नहीं लगूँगा, नहीं लगूँगा। धागे टूटकर छितरा गये हैं तो क्या, मैं उन्हें ही खोंट-खोंट कर

१. स्वदेश, गीत संख्या ६

जान दे दूँ, घर की खूँटियाँ बटोरकर मैं बेड़ा नहीं रोकूँगा। घास की रस्सी टूट गयी है तो क्या इसलिए छाती पीट-पीटकर रोंऊ, अब तो मैं पाल की रस्सी कसके पकड़ लूँगा। वह रस्सी टूटने नहीं दूँगा, नहीं दूँगा-

आमि फिरबो ना रे,
फिरबो ना आर फिरबो ना रे-
(ए मन) हावार मुखे भासला तरी
(कूले) भिड़बो ना आर भिड़वा ना रे
झड़िये गेछे सुतो छिड़े
वाई खूँटे आज मरबो कि रे
(ए खन) भाँगा घरेर कुड़िये खुँटि
(पेड़ा) घिरबो ना आर घिरबो ना र
घाटेर रसि गेछे केटे
कॉ दवो कि ताइ वक्ष फेटे,
(ए खन) पालेर रसि धरबो कसि
(ए खन) छिड़वौ ना आर
छिड़बौ ना रे[१]

द्विवेदी जी लिखते हैं जो एक बार रास्ते पर निकल पड़ा है, उसे फिरने का नाम लेना भी ठीक नहीं है। नेता वही हो सकता है जो स्वयं अपने आपको ही जीत सके। रवीन्द्रनाथ ने नाना भाव से इस बात पर जोर दिया। यथा-

ऑप्नी ॲबोश होलि, तॅबे बोल दिबि तुई कारे
उठे दाड़ा उठे दाड़ा, भेगे पोड़िश नारे
कोरिश् ने लाज कोरिश् ने भॅय, आप्ना के तुई कोरे ने जॅय

१. रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीयगान, पृ०१२९

शॉबाइ तॉखोन शाड़ा देबे डाक् दिबि तुई जारे
बाहिर जोदि होलि पॅथे फिरिश ने तुई कोनो मॅते,
थेके थेके पिछोन - पाने चाश्ने बारे - बारे
नेई जेरे भोय त्रिभु बॅने, भोय शुधु तोर निजेर मोने
अभोय चरन शॅरोन कोरे बाहिर होये जारे[१]

अर्थात्- अरे ओ अभागे यदि तूँ स्वयं ही अवसादग्रस्त होकर गिर पड़ेगा तो दूसरे किसी को वक्त कैसे देगा। उठ पड़ खड़ा हो जा, हिम्मत न हार। लाज छोड़ दे, भय छोड़ दे- तू अपने आपको ही जीत ले। जब ऐसा हो जायेगा तब तू जिसे पुकारेगा, वह तेरी पुकार पर चल पड़ेगा। अगर तू रास्ते में निकल ही पड़ा है तो अब जो भी हो जैसा भी हो, लौटने का नाम न ले। अरे ओ अभागे, तू बार-बार पीछे की ओर न देख। भाई मेरे दुनियाँ में भय कहीं नहीं है वह केवल तेरे अपने मन में है। तू सिर्फ अभय चरणों की शरण लेकर निकल पड़-

बुक बेंधे तुइ दॉड़ा देखि, बारे-बारे हेलिश ने भाई
शुधु तुई भेबे भेबेइ हातेर लोक्खि ठेलिश ने भाई
एकटा किछु कोरेने ठिक, भेशे फेरा मॅरार ओधिक,
बारेक ए-दिक बारेक ओ-दिक, ए खेला आरखेलिश ने, भाई
मेले कि ना मेले रॅतन, कोरते हॅबे तोबू जतोन,
ना जोदि हॅय मोनेर मॅतोन, चोखेर जॅलटा फेलिश ने, भाई
भाशाते हॅय भाशा मेला, कोरिशने आर हेला फेला
पेरिये, जखोन जाबे बेला तॅखोन आँखि मेलिश ने, भाई [२]

"ना भाई, तू कमर कसकर तैयार हो जा, वार-वार हिलना ठीक नहीं है। मेरे दोस्त, केवल सोचकर तू हाथ में आई लक्ष्मी को ठुकराने की गलती

१. स्वदेश, गीत संख्या ८
२. पंचशती, स्वदेश १७

न कर। इधर या उधर कुछ एक बात तै कर ले। यह भी क्या कि केवल विचारों के स्रोत पर वहता ही फिरा जाय। वहता फिरना तो मर जाने से बुरा है। ना भाई, एक बार इधर एक बार उधर-यह खेल अब बन्द कर । रत्न मिलता हो तो, न मिलता हो तो, एक बार प्रयत्न तो फिर भी करना ही पड़ेगा। क्या हुआ अगर वह तेरे मन लायक नहीं है तो। न भाई, तू अब आँसू तो मत गिरा। डोंगी धारा में छोड़ देनी हो तो छोड़ दे, पेशोपेश में पड़कर समय क्यों बरबाद कर रहा है जब अवसर हाथ से निकल जायेगा, पयान की बेला बीत जायेगी, क्या तू तब आँख खोलेगा।"

घॅरे मुख मोलिन देखे गोलिशने-ओरे भाई।
बाइरे मुख ऑधार देखे तोलिश ने ओरे भाई।।
जा तोमार आछे मोने शाधु ताई पोरान पोने,
शुधु ताइ दोशजनारे बोलिश ने ओरे भाई
ऐकी पॅथ आछे ओरे, चॅलोशेई रॉश्ता धोरे
जे आशे तारी पीछे-चोलिश ने-ओरे भाई
हॉक्ना आपोन काजे-जा खुशी बोलुक नाजे,
तानिये गायेर जालाये जोलिश ने ओरे भाई[१]

"भाई मेरे, घर में म्लान मुँह देखकर तू गल न जा, बाहर अंधकारमय मुख देखकर तू बिदक न जा, जो तेरे मन में है, उसे प्राणों की बाजी लगाकर भी पाने का प्रयत्न कर, सिर्फ इतना ध्यान रख कि उस मनचाही वस्तु के लिए दस आदमियों के बीच हल्ला न करना पड़े। भाई मेरे, रास्ता केवल एक ही है उसे ही पकड़कर आगे बढ़े चल। जिसे ही आया देख, उसी के पीछे चल पड़ने की गलती न कर । तू अपने काम में लगा रह, जिसे जो खुशी हो, उसे वही कहने देना। क्योंकि तू दूसरों की परवाह करता है, औरों की बात से अपने-आप को झुलसाना ठीक नहीं है, ना तू किसी की भी परवाह न कर।"

द्विवेदी जी इस पद्य के माध्यम से सम्भवतः यही कहना चाह रहे हैं कि

१. स्वदेश, गीत संख्या ३१

किसी भी व्यक्ति के हाव-भाव को देखकर निश्चय को मत छोड़ो। तुम जिस कार्य को करने की ठाने हो उसे पूरा करो। मनुष्य की जाति ही आलोचना करती है जिसे जैसे खुशी प्राप्त हो वैसे उसे प्राप्त करने दो।

द्विवेदी जी रवीन्द्रनाथ के पंचशती नामक पुस्तक से इस पद को रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीयगान नामक निबन्ध में रखते हुये कहते हैं कि जिस वीर ने एक बार बढ़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया, जो अपने आपको जीतकर, अपने समस्त क्षुद्र स्वार्थ को भूलकर अमृत के संधान में निकल पड़ा है, उसकी विजय अवश्य है। यथा-

नाई-नाई भॅय, हॅबे-हॅबे जॅय, खुले जाबे ऐई दार-
जानि-जानि तोर बॅन्धॅन डोर छिंड़े जाबे बारे-बार।।
खॅने-खॅने तुई हाराये आपोना शुप्ति निशिथ कोरिश जापोना।
बारे-बारे तोरे फिरे पेते हॅबे बिश्शेर ओधिकार ।।
स्थॅले जॅले तोर आछे आहोवान, आहोवान लोकालॅये,
चिरोदिन तुई गाहिबी जे गान शुखे दुखे लाजे भॅये
फूलो पॅल्लबो नोदी निर्झर, शुरे-शुरे तोर मिलाइबे शॅर,
छॅन्दो जे तोर स्पन्दित हॅबे आलोक ॲन्धोकार ।[1]

अर्थात्- भय नहीं है, भय नहीं है, विजय निश्चित् है, यह द्वार खुलकर ही रहेगा। मैं ठीक जानता हूँ तेरे बन्धन की डोरी बार-बार टूट जायेगी। क्षण-क्षण तू अपने आप को खोकर सुप्ति की रात काट रहा है। अरे भाई तुझे बार-बार विश्व का अधिकार पाना होगा। स्थल में, जल में, लोकालय में, सर्वत्र तेरा आवाहन है। तू सुख और दुःख में, लाज की हालत में, और भय की हालत में भी गान गायेगा, तेरे उस प्रत्येक स्वर में फूल-पल्लव, नदी, निर्झर मिलायेगें और तेरे उस प्रत्येक छन्द से आलोक और अंधकार स्पन्दित होंगे।

द्विवेदी जी रवीन्द्र के इस पद्य के माध्यम से कहते हैं कि देश के प्रति

१. पंचशती (स्वदेश), पृ०-३६५, पद्य सं० २५ (१९२५)

भक्ति किसी स्वार्थ के कारण नहीं हो सकती है, माता के प्रति पुत्र का प्रेम अहैतुक होता है। रवीन्द्रनाथ का विचार है। ''माता मेरा जन्म सार्थक है जो इस देश में पैदा हआ हूँ मेरा जन्म सार्थक है जो तुझे प्यार कर रहा हूँ। मुझे ठीक नहीं मालूम कि तेरे पास किसी रानी की तरह कितना धन है, कितने रत्न हैं। सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि तेरी छाया में आने से मेरे अंग जुड़ा जाते हैं। मै ठीक नहीं जनता कि और किस वन में ऐसे फूल खिलते हैं या नहीं, सिर्फ इतना जानता हूँ कि तुम्हारे प्रकाश में पहले पहल मैंने आँखें खोली और व जुड़ा गईं। बस! इसी आलोक में उन्हे मूँद भी लूँगा-''

शार्थक जॅनॅम आमार जोन्मेछि ऐई देशे।।
शार्थक जॅनॅम मागो, तोमाय भालोबेसे।।
जानिने तोर धोन रॅतोन-आछे कीना रानिर मॅतोन,
शुधु जानि आमार अंगो जुड़ाय तोमार छायाये ऐशे।।
कोन बोने ते जानिने फुल गन्धे ऐमोन कॅरे आकुल,
कोन गॅगोने ओठे रे चाद ऐमोन हाशि हेशे
ऑखि मेले तोमार आलो प्रॅथोम आमार चोख जुड़ालो
ओई आलो तेई नॅयोन रेखे मुद्बो नॅयोन शेशे[1]

द्विवेदी जी का यह निबन्ध 'अशोक के फूल' में वर्णित रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गान नाम से है, उसमें ही बंगला भाषा के साहित्य के उपजीव्यों का प्रयोग मिलता है, जो अमूल्य है।

★ बौद्ध ग्रंथों के उपजीव्य

पं० श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी जी अपने निबन्ध **'हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली'** में लिखते हैं - ललित विस्तर के अनुसार कुमार सिद्धार्थ को ८६ कलायें सिखाई गयी थीं। इनके अतिरिक्त ६४ काम कलायें भी सिद्धार्थ को सिखाई गई थीं। गणिकाओं को भी नाना प्रकार की कलायें सीखनी पड़ती थीं- यशोधरा को ललित विस्तर में **'शास्त्रे विधिज्ञकुशला**

१. पंचशती (स्वदेश), पृ० ३५९ पद्य सं० १९ (१९०५)

गणिका यथैव'[1] कहा गया है। जिसका तात्पर्य है, गणिकायें ज्योतिषी के समान कुशल होती हैं। जिस प्रकार ज्योतिषी, शास्त्रों का पारंगत होता है उसी प्रकार ये गणिकायें हर विद्या को जानने वाली होती हैं। पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने **काव्यकला** नामक निबन्ध में सिद्धार्थ के ६४ काम-कलाओं का वर्णन किया है। निश्चिंततः कहा जा सकता है कि बुद्ध के समय में भी कलायें नागरिक जीवन का आवश्यक अंग हो गयी थीं।

चतुषष्टि काम कलितानि चानुभाषिया
नूपुर मेखला अभिहनी विगलित वसना।
कामशराहतास्समदनाः प्रहसित बदना
किन्तव आर्य पुत्र विकृति यदि न भजसे।।[2]

'अशोक के फूल' निबन्ध में बौद्धग्रन्थों के सन्दर्भों से आये उपजीव्यों का प्रयोग बहुत अल्पमात्र ही मिलता है।

★ 'हिन्दी ग्रंथों से लिये गये उपजीव्य'

डॉ० द्विवेदी जी अपने निबन्ध संग्रह **'अशोक के पूल'** में वर्णित **'घर जोड़ने की माया'** नामक निबन्ध मे लिखते हैं कि सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा ही जब सबसे बड़ा लक्ष्य हो जाता है तो सत्य पर से दृष्टि हट जाती है। साधन की शुद्धि की परवाह न करना भी असली कारण नहीं है, वह भी कार्य है, क्योंकि साधन की अशुचिता को सत्य-भ्रष्ट होने का कारण मान लेने पर भी यह प्रश्न बना ही रहता है कि विद्वान् और प्रतिभाशाली व्यक्ति भी साधन की अशुचिता के शिकार क्यों बन जाते हैं? घर जोड़ने की अभिलाषा ही इस प्रवृत्ति का मूल कारण है। लोग केवल सत्य को पाने के लिए देर तक नहीं टिके रह सकते। उन्हें धन चाहिए, मान चाहिए, यश चाहिए, कीर्ति चाहिए। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि जो उनके मार्ग पर चलना चाहता हो, अपना घर पहले फूँक दें-

१. ललित बिस्तर, पृ. ५०
२. ललित बिस्तर, पृ. ४१७

कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठा हाथ
जो घर फूँके आपनो सो चले हमारे साथ [1]

द्विवेदी जी लिखते हैं। घर फूँकने का अर्थ है, धन और मान का मोह त्याग देना, भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ देना और सत्य के सामने सीधे खड़े होने में जो कुछ भी बाधा हो उसे निर्ममतापूर्वक ध्वंस कर देना।

द्विवेदी जी **घर जोड़ने की माया** नामक निबन्ध में लिखते हैं कि माया से छूटने के लिए माया के प्रपंच रचे गये हैं, यह सत्य है। यह त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही माया है। पर जो माया चैतन्य-रूप ब्रह्म को ईश्वर रूप में प्रकट करती है वह सत्व गुण प्रधान है, अर्थात् उसमें रजोगुण और तमोगुण का प्रायः अभाव है। इसी भाव को लक्ष्य करके कबीरदास ने कहा था कि यह रघुनाथ की माया ही है जो शिकार खेलने निकली है और साम्प्रदायिक जालों में फँसाकर मुनि, पीर, जैन, जोगी, जंगम, ब्राह्मण और सन्यासी को मार रही है-

ई माया रघुनाथ की बैरी खेलन चली अहेरी हो
चतुर चिकनिया चुनि-चुनि मारे काहु न राखे नेरा हो
मौनी पीर पैगम्बर मारे ध्यान धरता जोगी हो
जंगल में जंगम मारे माया किनहु न भोगी हो
वेद पढ़ते वेदुआ मारे पूजा करते स्वामी हो
अरथ विचारत पंडित मारे बाधे सकल लगामी हो[2]

स्पष्ट ही मालूम होता है कि घर जोड़ने की माया बड़ी प्रबल है और संसार का विरला ही कोई इसका शिकार होने से बच सकता है। इतनी प्रबल शक्ति के यथार्थ को उलटा नहीं जा सकता। उसे मारकर ही उसके आकर्षण से बचने की बात सोची जा सकती है।

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने निबन्ध **भारतीय संस्कृति की देन** में लिखते हैं कि मनुष्य की श्रेष्ठतर मान्यतायें केवल अनुभूत होकर ही अपनी महिमा सूचित करती है। केवल नेति-नेति कहकर ही मनुष्य ने उस अनुभूति

१. कबीर ग्रंथावली, पृ०-६०- १३.६४८ से
२. कबीर ग्रन्थावली, पृ०-२५६.१२७

को प्रकाशित किया है। अपनी चरम सत्यानुभूति को प्रकट करते समय कबीरदास ने इसी प्रकार की विवशता का अनुभव किया था-

ऐसा लो मत ऐसा लो, मैं केहि विधि कहौं गभीरा लो
बाहर कहौं तो सत्गुरू लाजै, भीतर कहौं तौ झूठा लो[1]

अर्थात- उसे न तो भीतर कहा जा सकता है, न बाहर । बाहर कहो तो सद्गुरू लज्जित होंगे क्योंकि सद्गुरू रुप में वह भीतर ही बैठा है और समस्त को जो हम देख रहे हैं और पहचान रहे हैं वह इसलिए कि वह भीतर बैठा हुआ दिखा रहा है और पहचान करा रहा है, सद्गुरू को हम बाहर कैसे कहें। फिर अगर भीतर कहें तो सारा संसार, समूची वाह्य रूप में दृश्यमान सृष्टि झूठी हो जाती है। असल में वह बाहर से भीतर तक ऐसा व्याप्त हो रहा है कि कहकर समझाया नहीं जा सकता। न तो वह सृष्टि का विषय है और न मुक्ति का । वह अलख है, अगम है, अगोचर है। उसे पुस्तक में लिखकर प्रकट नहीं किया जा सकता । उसे वही भली-भाँति जानते हैं, पहचानते हैं। जो नहीं जानते, वे कहने पर विश्वास नहीं करते । मनुष्य की सामान्य संस्कृति भी बहुत कुछ ऐसी ही अनूठी वस्तु है। आचार्य द्विवेदी जी **''भारतीय संस्कृति की''** देन नामक निबन्ध में लिखते हैं कि श्रेष्ठ लक्ष्य परस्पर विरोधी नहीं होता। प्रसिद्ध संत रज्जबदास ने कहा था-

'सब साँच मिले तो साँच है, न मिले तो झूठ''

सम्पूर्ण सत्य अविरोधी होता है। जहाँ विरोध दिख पड़े, वहाँ सोचने की जरुरत है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी **'हमारे पुराने साहित्य के इतिहास की सामग्री'** में लिखते हैं कि कबीरदास ने बीजक (१२वीं ध्वनि) में एक स्थान पर लिखा है कि **'ब्राहाण वैष्णव एकहि जाना'**।

हजारी प्रसाद जी ने **संस्कृत का साहित्य** निबन्ध में कबीर के पदों का उपजीव्य रुप में प्रयोग किया है।

१. पदा० शबद, २८

संस्कृत साहित्य हमें इतिहास की कठोर वास्तविकताओं के सामने लाकर खड़ा कर देता है। मनुष्य अन्त तक अजेय है, उसकी प्रगति रुक नहीं सकती। उतावला होना बेकार है। सब कुछ आज ही समाप्त हो नहीं जायेगा। चार दिन की शक्ति पर अभिमान करना व्यर्थ है-

''सब ठाठ पड़ा रह जायगा जब लाद चलेगा बंजारा[1]

डा० द्विवेदी जी **'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है'** निबन्ध में लिखते हैं कि जो लोग भेद-भाव को पकड़कर ही अपना रास्ता निकालना चाहते हैं, वे गलती करते हैं। विरोधी रहे हैं तो उन्हें आगे भी बने ही रहना चाहिए, यदि कोई काम की बात नहीं हुई। हमें नये सिरे से सब कुछ गढ़ना है, तोड़ना नहीं हैं टूटे को जोड़ना है। भेदभाव की जयमाला से हम पार नहीं उतर सकते। कबीर ने हैरान न होकर कहा था-

कबीर इस संसार को समझाऊ कै बार
पूँछ जू पकड़े भेद का, उतरा चाहे पार[2]

मनुष्य एक है। उसके सुख-दुःख को समझना, उसे मनुष्यता के पवित्र आसन पर बैठाना ही हमारा कर्तव्य है।

★ स्वरचित उपजीव्य

'अशोक के फूल' निबन्ध में द्विवेदी जी के स्वरचित उपजीव्यों की संख्या बहुत कम है। ऐसा ज्ञात होता है कि डॉ०द्विवेदी जी स्वयं कबीर के शिष्यों मे आते हैं। क्योंकि इन उपजीव्यों की गणना कहीं और किसी के द्वारा रचित जान नहीं पड़ती है। वैसे इससे मिलते-जुलते दोहे बीजक में मिलते हैं-

सत्त की दातौन संतोष की झारी ।
सत्त नाम ले घसौ विचारी ।।
किया दातौन भया परकास ।

१. कबीर ग्रन्थावली, पृ.-१०५
२. अशोक के फूल ३३.२०

अजर नाम गहा विश्वास ।।
अभी नाम ले पहुँचे आय ।
कहै कबीर सब लोक सिधाय।[१]

चूल्हे में आग का मंत्र-

चूल्हा हमारे चौहते सब घर तये रसोई ।
सत्त - सुकृत भोजन करें हमको छूत न होई ।।[२]

थाली परोसने का मंत्र-

चन्दन चौका कंचन थारी। हीरा लाल पदम की झारी।
बहुत भाँति जैयनार बनाये। प्रेम प्रीति सो पारस खाये।
संत सुहेला भोजन पाई। सत्त सुकृति सत्त नाम गुसाई।।[३]

कबीरदास ने अवतारों और पैगम्बरों की पूजा की कड़े शब्दों में निंदा की है। उनके शिष्यों के श्रद्धा के अतिरेक में उन्हें जिस प्रकार भव फन्द को काटने वाला समझकर स्तुति की, यह शायद फिर भी पीर-पैगम्बर के लिए ईर्ष्या की वस्तु हो सकती है-

नमो आदि ब्रह्मं अरुपं अनामं
भई आप इच्छा रचे सर्वधम्मं ।
न जानामि कोई करे कौन ख्यालं
नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ।।

तुही कोटि कोटान ब्रह्माण्ड कीन्हों
तुही सर्व को सर्वदा सुक्ख दीन्हों ।
वसे सर्व में सर्व रूपं दयालं
नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ।।

१. अशोक के फूल पृ०-२८
२. अशोक के फूल पृ०-२८
३. अशोक के फूल पृ०-२८

सबे संत कारन्ह तोही बतावैं
यही वेद ब्रह्मादि षट् शास्त्र गावैं ।
जपे नाम तेरो भजे जो तृकालं
नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ।।

लहे ज्ञान विज्ञान कैवल्य पूरं
महा मोह माया रहे ताहि दूरं ।
लखे ताहि उर में महा चित्तकालं
नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ।।[१]

*****

१. अशोक के फूल पृ०-२९-३०

चतुर्थ अध्याय

द्विवेदी जी के उपजीव्यों का वर्गीकृत स्वरुप

उपजीव्यों का वर्गीकृत स्वरूप

उपजीव्यों का वर्गीकरण

संस्कृत | हिन्दी | बंगला | बौद्धग्रन्थ एवं अन्य | स्वरचित

★ संस्कृत के उपजीव्य

पाठ	विषय	ग्रन्थ
अशोक के फूल	१- कामदेव का रत्नमय धनुष धरती पर गिरा तो अनेक पुष्पों में परिवर्तित हो गया।	वामन पुराण षष्ठ अध्याय
	२- मदनोत्सव त्रयोदशी के दिन होता है।	सरस्वतीकण्ठाभरण
	३- इस उत्सव का मनोहारी	मालविकाग्निमित्रं तृतीय अंक
	४- किसलय प्रसवोपि विलासिनां मदयितां दयिता श्रवणार्पितः	रघुवंश, ९/२८
वसन्त आ गया-	१- कुसमजन्मततो नवपल्लवाः	कुमारसम्भव
प्रायश्चित की घड़ी	१- तच्च सस्मृत्यसंस्मृत्य-रुपमत्यद्भुतं हरे।	

पाठ	विषय	ग्रन्थ
	विस्मयो मे महान राजन-रोमहर्षश्च जायते।	गीता, १८.७३
हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली	१- प्रतिग्रहाध्यापनयाजनानां-प्रतिग्रहं श्रेष्ठतमं वदंति।	स्मृतिचन्द्रिका
संस्कृत का साहित्य	१- म्लेच्छा ही यवनास्तेषु-सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम्। ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद् द्विजः।।	वृहत्संहिता, पृ०९
भारतीय संस्कृति की देन	१- धर्मो यो बाधते धर्म न स धर्मो कुधर्म तत्। अविरोधीतु यो धर्मः स धर्मो मुनिसप्तम।।	महाभारत, वनपर्व
	२- इन्द्रियाणि पराणाहु-रिंद्रियेभ्यः परंमनः। मनस्तु परा बुद्धियौ बुद्धे परतस्तु सः।।	गीता, ३/४२
भारतीय संस्कृति की देन	३-ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य-मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेव्यमानो ब्रजत्यधः।।	मनुस्मति, ६/३५
हमारे पुराने साहित्यकी सामग्री	मत्स्येन्द्र शब्द की व्याख्या	योगिसंप्रदायविष्कृति पृ० ४४८

पाठ	विषय	ग्रन्थ
काव्यकला	१- रूपं वर्णः प्रभारागः अभिजात्य विलासिता। लावण्यं लक्षणं छाया सौभाग्यं चेत्यमी गुणाः।।	सहृदय लीला, ७.४३२
	२- रत्नं हेमांशुके मात्यं मंडनं द्रव्ययोजने। प्रकीर्णचेत्यलंकाराः सतवैते मया मताः	वही, ७.४३३
	३- तेरह रत्नों के बारे में	बृहत्संहिता
	४- दस स्वभाव अलंकार के विषय में	दशरुपक
	५- उदीरितेंद्रियो धाता वीक्षांचक्रे यदार्यताम्। तदैव उनपंचाशद् भावा जाताःशरीरतः।। बिब्बोकाद्यास्तथा हाव- श्चतुःषष्टि कलास्तथा। कन्दर्पशरविद्धायाः संध्याया अभवन् द्विजाः।।	कालिका पुराण, २, २८-२९
	६- पंचाल की काम-कलाओं का वर्णन	कामसूत्र

पाठ	विषय	ग्रन्थ
मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है-	१- उर्ध्ववाहुर्विवौम्येष नैव कश्चिच्छ्रणोति मे । धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्म किं न सेव्यताम् ।।	महाभारत, स्वर्गपर्व
	२- सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत् । यदभूतहितमत्यंत- मेतत् सत्यं मतं मम्।।	महाभारत, शांति पर्व
नया वर्ष आ गया	गुह्यं ब्रह्म तदिदं व्रवीमि। न मनुष्ययच्छेष्ठतरं हि किञ्चित् ।।	महाभारत आदि- पर्व, श्लोक १९
भारतीय फलित ज्योतिष	१- स्त्री-पुरुष के अच्छे बुरे चिह्नों का वर्णन	वृहत्संहिता
	२-सवन के देवताओं आदिका वर्णन ।	ऐतरेय ब्राह्मण
	३- द्रुपद ने युधिष्ठिर को शुभ मुहूर्त में विवाह करने का आदेश दिया।	महाभारत, आदि पर्व
	४- दैवज्ञ या ज्योतिषी का लक्षण	वृहत्संहिता
	५- येन यत्प्राप्तव्यं तस्य विपाकः सुरेशसवोऽपि यः साक्षान्नियतिज्ञः सोऽपि न शक्तो अन्यऽथाकर्तुम् ।।	वृहज्जातक

पाठ	विषय	ग्रन्थ
	६- आषाढ़ी योग का वर्णन	वृहत्संहिता
	७- नैर्ऋत्य कोण की हवा का वर्णन	वृहत्संहिता

★ हिन्दी के उपजीव्य

घर जोड़ने की माया	१- कबिरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठा हाथ। जो घर फूँके आपना सो चले हमारे साथ।।	कबीर ग्रंथावली
	२- ई माया रघुनाथ की बौरी खेलन चली अहेरी हो। चतुर चिकनिया चुनि-चुनि मारे काहुन राखे- नेरा हो।।	कबीर ग्रंथावली
भारतीय संस्कृति की देन	१- ऐसा लो मत ऐसा लो, मैं केहि विधि कहौं गभीरा लो। बाहर कहौ तो सतगुरु लाजै, भीतर कहौ तो झूठा लो।।	शबद
	१- सब साँच मिलै तो साँच हैं, न मिले सो झूठ	रज्जबदास
संस्कृत का साहित्य	१- सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बनजारा ।।	कबीर ग्रंथावली
मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है	१- कबीर इस संसार को समझाऊँ कै बार। पूँछ जू पकड़े भेद का	कबीर ग्रंथावली

	उतरा चाहै पार।।	
हमारे पुराने इतिहास की सामग्री	ब्राह्मण वैष्णव एकहि जाना	बीजक

★ बंगला के उपजीव्य

रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीय गान

१. श्राबोनेर धारार मॅतो पोड़ुक झोरे पोड़ुक झोरे,
तोमारि शुरटी आमार मुखेर पॅरे, बुकेर पॅरे।
पूरोवेर ऑलोर शाथे पोड़ुक प्रातेदुयी नॅयाने-
निशीथेर ऑन्धोकारे गोभिरधारे पोड़ुक प्राने
निशीदिन ऐई जीबोने शुखेर पॅरे दुखेर पॅरे
श्राबोनेर धारार मॅतो पोड़ुक झोरे पोड़ुक झोरे।
जे शाखाय फूल फोटे ना फॅलधॅरे ना ऐकेबारे।
तोमार ओई बादोल बाये दिक जागाये शेई शाखारे।
जा किछु जीर्णो आमार दीर्णो आमार जीबोनहारा
ताहारि स्तॅरे - स्तॅरे पोड़ुक झोरे शुरेर धारा
निशिदिन ऐई जीबोनेर तृशार पॅरे भूखेर पॅर
श्राबोनेर धारार मॅतो पोड़ुक झोरे पोड़ुक झोरे।

गीतिमाल्य, ६, पृ० १४६

२. ओरे तोरा नेई वा कथा बोल्लि (बोल्ली)
दॉड़िये हाटेर मध्यिखाने नेई जागालि पोल्ली
मरिस् मिथ्ये बोके झोके, देखे केबल हाशे लोके,
नाहय निये आपॅन मनेर आगुन मने मनेई ज्वललि-

अंतरे तोर आछे की जे नेई रटालि निजे-निजे,
ना हय, वाद्य गुलो बंधो रखे चुपचापेइ चोल्लि-
काज थाके तो कॅरगे ना काज लाज थाके तो घुचागे लाज
क जे तोरे की बोलेछे नेइ वा तातै टोल्लि

स्वदेश, गीत संख्या २७

३.(यदि) जोदि तोर डाक शुने केउ न आशे तबे एक्ला चलो रे।
ऐक्ला चलो, ऐक्ला चलो, ऐक्ला चलो रे।।
जोदि केऊ कथा ना कॅय - ओरे ओरे ओ अभागा
जोदि शवाई थाके मुख फिराये, शवाई कॅर भॅय-
तॅबे परान खुले,
ओ तुई मुख फुटे तोर मोनेर कॅथा, एक्ला बॅलो रे।।
जोदि शबाई फिरे जाय ओरे - ओरे ओ अभागा।
जोदि गॅहोन पथे जाबार काले केउ फिरे ना चाय
तबे पॅथेर कॉटा ओ तुई रॅक्तो माखा चरण तॅले एक्ला दलो रे।।
जोदि आलो ना धॅरे - ओरे ओ अभागा
जोदि झॅड़ बादोले आंधार राते दुआर देय घॉरे
तबे बज्रानॅले
आपन बुकेर पॉजर ज्वालिये निये एक्ला ज्वलो रे।।

स्वदेश, गीत संख्या ३

४. जोदि तोर भावना थाके, फिरे जाना तबे तुई फिरे जाना।
जोदि तोर - भॅय थाके तो, कोरि माना।।
जोदि तोर घुम जोड़िये थाके गाये, भूलबि जे पॅथ पाये-पाये,
जोदि तोर हात कॉपे तो निबिये आलो, शबाय कोरबि काना
जोदि तोर छाड़ते किछु ना चाहे मोन, कोरिश् भारी बोझा आपोन,
ताबे तुई शोइते कभु पारबि ने रे विषम पॅथेर टना

जोदि तोर आपोन होते अकारणे शुखशदाना जागे मोने,
तबै तुई तॅर्क कोरे शॅकोल कॅथा कोरबि नाना खाना

स्वदेश, गीत संख्या २८

५. जे तोरे पागल बोले, तारे तुइ बोलिस्ने किछु
आज के तोरे कैमोन भेवे ओंगे जे तोर धूलो देबे
काल शे प्राते माला हाते आश्बे रे तोर पिछु-पिछु
आज के आपोन मानेर भॅरे धाक शे वोशे गोदिर पॅरे
काल से प्रेमे आश्बे नेमे, कोरबे शे तार माथा नीचू

स्वदेश, गीत संख्या २६

६.रोइलो बोले राखले कारे हुकुम तोमार फोलबे कॅबे
टानाटानि टिक्बे ना भाई, रॉबार जेटा शेटाई रॉबे
जा खुशि ताई कोरते पारो - गॉयेर जोरे राखो मारो-
जॉर गाये शॉब व्यथा बाजे तिनि जा शॉन शेटाई शॉबे
ॲनेक तोमार टाका कोड़ि ॲनेक दॅड़ा अनेक दोड़ि
ॲनेक अश्वो ॲनेक कोरी ॲनेक तोमार आछे भॅबे
भाब्छो हबे तुमिइ जा चाओ जॅगोत् टाके तुमिइ नाचाओ,
देखबे हठात् नॅयोन खुले, हॅय ना जेटा शेटाओ हॉबे

स्वदेश, गीत संख्या ३६

७. आमार नाइ वाह लो पारे यावा या हावाते चलतो तही
अगैते सेइ लगाई हावा। नेइ यदि वा जमलो पाहि,
घाट पाछे तो बसेत पारि आमार आशार तरी डुबलो यदि
देखबो तोदेर तरी वावा । हातेर काछे कोलेर काछे
या आछे सेई अनेक आछे आमार सारा दिनैर एइकिरे काज
ओपार पाने कैदे चावा । कम किछु मोर थाके हेथा

पूरिये नेवी प्राण दिये ता, आमार सेइखाने तोइ कल्पलता
ये खाने मोर दा बि-दावा

स्वदेश, गीत संख्या ३६

८. तोर आपोन जने छाड़बे तोरे
ता बोले भाबना कॅरा चोलॅबेना
ओ तोर आशालता पोड़बे छिड़े
हॅय तोरे फॅल फोलबे ना-
ऑशबे पॅथे आंधार नेमे ताइ बोलई की रॅइबी थेमे
ओ तुई बारे - बारे जॅलॅबी बाती
हॅय तो बाती जोलबे ना
शुने तोमार मुखेर बानी, (बाड़ी)
आश्बे घिरे बॅनेर प्रानी, (प्राणी)
हॅय तो तोमार आपोन घॅरे
पाषाण हिया गोलबे ना
बॅद्धो दुआर देखलि बोले
तोरे बारे - बारे ठेलते होबे
हॅयतो दुआर टोलबे ना

स्वदेश, गीत संख्या ४

९. निशिदिन भॅरशा राखिश ओर मॅन, हॅबेइ हॅबे।
जोदि पॅन कोरे थॉकिश, शेपोन तोमॉर रोबेइ रोबे।।
ओरे मोन हॅबेई हॅबे।।
पाषाण शामान आछे पोड़े प्रान पेयेशे उठबे पोरे
आछे जारा बोबार मोतॅन, तराओ कॅथा कोबेइ कॅबे।।
शॅमय होलो शॅमय होलो, जे जार आपोन बोझा तोलो रे,

दुःख जोदि माथायॅ् धोरिश, शे दुःखो तोर शबेई शबे
घोन्टा जॅखोन उठॅबे बेजे, देखबि शॅबाइ आशबे शेजे
ऐक्शाथे शॉब जात्री जॉतो ऐकई रॉश्ता लॉबेइ लॅब

स्वदेश, गीत संख्या ६

१०. आमि फिरबो ना रे,
फिरबो ना आर फिरबो ना रे-
(ए मन) हावार मुखे भासला तरी
(कूले) भिड़बो ना आर भिड़वा ना रे
झड़िये गेछे सुतो छिड़े
वाई खूँटे आज मरबो कि रे
(ए खन) भाँगा घरेर कुड़िये खुँटि
(पेड़ा) घिरबो ना आर घिरबो ना र
घाटेर रसि गेछे केटे
कॉ दवो कि ताइ वक्ष फेटे,
(ए खन) पालेर रसि धरबो कसि
(ए खन) छिड़वौ ना आर
छिड़बौ ना रे

रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीयगान, पृ०१२९

११. ऑप्नी ॲबोश होलि, तॅबे बोल दिबि तुई कारे
उठे दाड़ा उठे दाड़ा, भेगे पोड़िश नारे
कोरिश् ने लाज कोरिश् ने भॅय, आप्ना के तुई कोरे ने जॅय
शॉबाइ तॉखोन शाड़ा देबे डाक् दिबि तुई जारे
बाहिर जोदि होलि पॅथे फिरिश ने तुई कोनो मॅते,
थेके थेके पिछोन - पाने चाश्ने बारे - बारे

नेई जेरे भोय त्रिभु बॅने, भोय शुधु तोर निजेर मोने
अभोय चरन शॅरोन कोरे बाहिर होये जारे

स्वदेश, गीत संख्या ८

१२. बुक बेंधे तुइ दॉड़ा देखि, बारे-बारे हेलिश ने भाई
शुधु तुई भेबे भेबेइ हातेर लोक्खि ठेलिश ने भाई
एकटा किछु कोरेने ठिक, भेशे फेरा मॅरार ओधिक,
बारेक ए-दिक बारेक ओ-दिक, ए खेला आरखेलिश ने, भाई
मेले कि ना मेले रॅतन, कोरते हॅबे तोबू जतोन,
ना जोदि हॅय मोनेर मॅतोन, चोखेर जॅलटा फेलिश ने, भाई
भाशाते हॅय भाशा मेला, कोरिशने आर हेला फेला
पेरिये, जखोन जाबे बेला तॅखोन आँखि मेलिश ने, भाई

पंचशती, स्वदेश १७

१३. घॅरे मुख मोलिन देखे गोलिशने-ओरे भाई।
बाइरे मुख ऑधार देखे तोलिश ने ओरे भाई।।
जा तोमार आछे मोने शाधु ताई पोरान पोने,
शुधु ताइ दोशजनारे बोलिश ने ओरे भाई
ऐकी पॅथ आछे ओरे, चॅलोशेई रॉश्ता धोरे
जे आशे तारी पीछे-चोलिश ने-ओरे भाई
हॉक्ना आपोन काजे-जा खुशी बोलुक नाजे,
तानिये गायेर जालाये जोलिश ने ओरे भाई

स्वदेश, गीत संख्या ३१

१४. नाई-नाई भॅय, हॅबे-हॅबे जॅय, खुले जाबे ऐई दार-
जानि-जानि तोर बॅन्धॅन डोर छिंड़े जाबे बारे-बार।।

खॅने-खॅने तुई हाराये आपोना शुप्ति निशिथ कोरिश जापोना।
बारे-बारे तोरे फिरे पेते हॅबे बिश्शेर ओधिकार ।।
स्थॅले जॅले तोर आछे आहोवान, आहोवान लोकालॅये,
चिरोदिन तुई गाहिबी जे गान शुखे दुखे लाजे भॅये
फूलो पॅल्लबो नोदी निर्झर, शुरे-शुरे तोर मिलाइबे शॅर,
छॅन्दो जे तोर स्पन्दित हॅबे आलोक ऑन्धोकार।

पंचशती (स्वदेश), पृ०-३६५, पद्य सं० २५ (१९२५)

१५. शार्थक जॅनॅम आमार जोन्मेछि ऐई देशे।।
शार्थक जॅनॅम मागो, तोमाय भालोबेसे।।
जानिने तोर धोन रॅतोन - आछे कीना रानिर मॅतोन,
शुधु जानि आमार अंगो जुड़ाय तोमार छायाये ऐशे।
कोन बोने ते जानिने फुल गंन्धे ऐमोन कॅरे आकुल,
कोन गॅगोने ओठे रे चाद ऐमोन हाशि हेशे
ऑखि मेले तोमार आलो प्रॅथोम आमार चोख जुड़ालो
ओई आलो तेई नॅयोन रेखे मुद्बो नॅयोन शेशे

पंचशती (स्वदेश), पृ० ३५९ पद्य सं० १९ (१९०५)

★ बौद्ध ग्रंथों एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त उपजीव्य

पाठ	विषय	ग्रन्थ
अशोक के फूल-	१. श्रीसुन्दरी साधन तत्वराणां। योगश्चभोगश्च वरस्य एवं।।	ललित विस्तर
हमारी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली-	१. शास्त्रे विधिज्ञकुशला- गणिकं यथैव''	ललित बिस्तर
	२. चतुःषष्टि कामकलितानि चानुभाषिया।	ललित विस्तर

पाठ	विषय	ग्रन्थ
	नूपुर मेखला अभिहनी विगलित वसना।। कामशराहतास्समदनाः प्रहसित बदनाः । किन्तव आर्यपुत्र विकृति यदि न भजसे।।	
हमारे पुराने साहित्य की सामग्री-	कैसे सामूहिक रूप से मुसलमानी धर्म स्वीकारा आदि का विस्तृत वर्णन।	पीपुल्स ऑफ इण्डिया

★ स्वरचित उपजीव्य

घर जोड़ने की माया	१. सत्त की दातौन संतोष की झारी । सत्त नाम ले घसौ विचारी ।। किया दातौन भया परकास । अजर नाम गहा विश्वास ।। अभी नाम ले पहुँचे आय । कहै कबीर सब लोक सिधाय।	अशोक के फूल
	२. चूल्हा हमारे चौहते सब घर तये रसोई सत्त सुकृत भोजन करें हमकों छूतन होई।।	अशोक के फूल
	३. चन्दन चौका कंचन थारी। हीरा लाल पदम की झारी। बहुत भाँति जैयनार बनाये। प्रेम प्रीति सो पारस खाये। संत सुहेला भोजन पाई।	अशोक के फूल

सत्त सुकृति सत्त नाम गुसाई।।	
४. नमो आदि ब्रह्मं अरुपं अनामं भई आप इच्छा रचे सर्वधम्मं । न जानामि कोई करे कौन ख्यालं नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ।।	अशोक के फूल
तुही कोटि कोटान ब्रह्माण्ड कीन्हों तुही सर्व को सर्वदा सुक्ख दीन्हों । वसे सर्व में सर्व रूपं दयालं नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ।।	
सबे संत कारन्ह तोही बतावैं यही वेद ब्रह्मादि षट् शास्त्र गावैं । जपे नाम तेरो भजे जो तृकालं नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ।।	
लहे ज्ञान विज्ञान कैवल्य पूरं महा मोह माया रहे ताहि दूरं । लखे ताहि उर में महा चित्तकालं नमोहं नमोहं कबीरं कृपालं ।।	

*****

पंचम अध्याय

अध्ययन की उपलब्धियाँ एवं उपसंहार

उपजीव्यों का औचित्य एवं सार्थकता

किसी कथन की पुष्टि के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि मूल रुप से सन्दर्भों के औचित्य सिद्ध किये जाय। जिस प्रकार गुरु अपने शिष्य को ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, आध्यात्म इत्यादि के विषय को समझाने के लिए अनेक उपायों के साथ विषय का औचित्य एवं संगत को सिद्ध करने के लिए दृष्टांत, उदाहरण, अन्तर्कथायें, सांस्कृतिक तत्वों के अनेक बिन्दुओं को तथ्य के साथ प्रस्तुत करके उसकी पुष्टि करता है उसी प्रकार वाङ्मय के किसी भी वस्तु अथवा कथ्य को सर्वांगस्थ देने के लिए उपजीव्यों का प्रस्तुतीकरण आवश्यक है।

इस ग्रन्थ में यह बात प्रतिपादित की जा चुकी है। किसी भी साहित्यकार को अपनी रचना के लिए कहीं न कहीं से वस्तु अथवा सामग्री प्राप्त करनी होती है। यह सामग्री किसी ग्रन्थ से, समाज से, प्राकृतिक उपादानों से हो सकती है। सांस्कृतिक परम्पराओं, रीति रिवाजों, जड़ वस्तुओं से हो सकती है तथा स्थूल एवं सूक्ष्म सृष्टि के उपादानों से भी हो सकती है। इन उपजीव्यों से प्राप्त सामग्री एकत्र करने के पश्चात् रचनाकार अपनी प्रतिभा, व्युत्पत्ति, अभ्यास और प्रातिभा, कल्पना के आधार पर उसके अनुकूल अनेक सन्दर्भ, दृष्टांत और उदाहरणों से उसकी साज-सज्जा करता है। ये सन्दर्भ रचनाकार के कथन को न केवल सर्वाङ्ग बनाते हैं, अपितु उसको अर्थ विस्तार से भी सुशोभित करते हैं। यही उपजीव्यों की सबसे बड़ी सार्थकता है।

उपसंहार-

जैसे-जैसे ज्ञान के नये-नये क्षेत्रों का पता लगता गया है, वैसे-वैसे महाप्राण विद्वानों की ज्ञान पिपासा बढ़ती गयी है। यही निरंतर वर्धमान ज्ञान पिपासा शोध-कार्य का मूल मंत्र है। जिनमें यह पिपासा एक बार जाग्रत हो गयी उसे कोई परिश्रम और अध्यसाय रोक नहीं सकता । पिछड़े डेढ़ सौ वर्षों के भारतवर्ष के इतिहास को ही यदि आप ध्यान से देखें तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि पुराने इतिहास के शोध के क्षेत्र की दुनियाँ ही बदल गयी है। एक जमाना था कि अशोक के शिलालेखों को कोई पढ़ने वाला नहीं था, ऐतिहासिक स्थानों के सम्बन्ध में ऊटपटांग लोक प्रवाद व्यापक रुप से चल रहे थे, किन्तु आज हमारे सामने प्रामाणिक तथ्यों का अपार भण्डार उद्घाटित है और फिर भी वह भण्डार पूरा नहीं है।

ज्ञान की प्रबल पिपासा ने मनुष्य को शोध प्रवृत्ति दी है और जब तक पिपासा है तब तक शोध के काम में शिथिलता नहीं आयेगी। वस्तुतः इन दिनों कराये जाने वाले शोध की एक बड़ी त्रुटि यह है कि वे विशुद्ध जिज्ञासा द्वारा चालित नहीं होते। पदोन्नति, जीविका प्राप्ति और अल्पायमास-**लभ्य यशो लिप्सा**, इस कार्य में जब प्रेरकवृत्ति के रूप में काम करने लगती हैं; तो दोष होना स्वाभाविक है।

'अशोक के फूल' निबन्ध संग्रह का नामकरण प्रत्येक दृष्टि से सार्थक है। संग्रह के निबन्ध हमें आशावान और आस्थावान बनाते हैं। 'अशोक के फूल' का प्रथम निबन्ध मानव जाति की दुर्दम, निर्मम धारा के हजारों वर्षों के संस्कृति से परिचित कराता है। इस निबन्ध के अध्ययन करने से बहुत सी संस्कृतियों का पता चलता है। साहित्य में द्विवेदी जी का व्यक्तित्व ओजस्वी, सरल एवं सहानुभूतिपूर्ण है।

सारांश रूप में द्विवेदी जी के निबन्धों में भारतीय संस्कृति की प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं। उनके निबन्धों में त्याग, तप, अहिंसा एवं आत्मशक्ति से

परिपूर्ण सच्चरित्र मानव के निर्माण का प्रयास दृष्टिगत होता है। इनके साहित्य में कहीं शुद्ध आचरण एवं मानव प्रेम का स्वर गूँजता हुआ सुनाई पड़ता है, तो कहीं भौतिक वातावरण से विक्षुब्ध आध्यात्मिक जीवन की शांति में साँस लेती हुई मानवता के सफल जीवन की कामना का स्वर उमड़ता हुआ दिखाई पड़ता है। इतना अवश्य है कि आचार्य द्विवेदी जी भारतीय संस्कृति में अभिव्यक्ति, रूढ़िवादिता, भाग्यवादिता, परस्पर प्रेम का भी उद्घाटन करना नहीं भूले हैं, परन्तु आपका मूल स्वर मानवता का उत्थान है। जिसमें मनुष्यता के परिष्कार एवं संस्कार का प्रयत्न अधिक किया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आचार्य जी सांकेतिक निर्बल भारतीय संस्कृति की प्राग्भूत आध्यात्मिकता, उदारता, मानव प्रेम, प्रकृति, विश्वप्रेम, राष्ट्रप्रेम, मानसिक संयम, आत्मोत्सर्ग, असीम श्रद्धा आदि विभिन्न भावों से ओत-प्रोत हैं।

द्विवेदी जी की बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्मदर्शी और शीर्घग्राही है उनमें कल्पना की अद्भुत उड़ान तथा विचारों का भण्डार है। एक विषय को अनेक दृष्टियों से कह सकने की क्षमता है। उनकी बहुज्ञता और प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक ज्ञान, दूरदर्शिता, सिद्धहस्तता, चिन्तन, लेखन क्षमता ने साहित्यिक वासियों को केवल चत्मकृत ही नहीं कर दिया है बल्कि बहुत कुछ देकर उपचार भी किया है। द्विवेदी जी का अतीत शिक्षा एवं साहित्य पर विश्वास वर्तमान को सुधारने के लिए है। शिक्षा और साहित्य आदि विषयों को उज्वल रुप प्रदान करने के लिए उनका दृष्टिकोण अत्यंत सुधारात्मक है। वे जनसाधारण के मस्तिष्कों पर रहने वाली अनेक वस्तुओं को खोजकर प्रत्यक्ष ला सकने में समर्थ हैं। उनकी खोज की प्रवृत्ति 'पुरानी पोथियाँ' हमारे पुराने साहित्य के इतिहास की सामग्री जैसे निबन्धों में स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे।

इस दिशा में मेरा विनम्र निवेदन यह है कि 'अशोक के फूल' के अन्तर्गत जितने भी निबन्ध संकलित हैं उसके अतिरिक्त द्विवेदी जी के अन्य बहुत सारे निबन्ध ग्रंथावली में संकलित किये गये है; जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इन निबन्धों के अन्तर्गत भी सन्दर्भों का संकलन कदम-कदम पर देखने को मिलता है। इन सन्दर्भों की गवेषणा निःसन्देह हिन्दी साहित्य की एक अक्षय निधि होगी। आवश्यकता सुधीजनों, विद्वानों, मनीषियों एवं उन शोधार्थियों की है जिनके अन्दर ज्ञान प्राप्ति की प्रबल पिपासा हो। द्विवेदी जी के सम्पूर्ण साहित्य में अनेक रहस्य भरे पड़े हैं, उन रहस्यों का उद्घाटन आवश्यक है। विद्वानों का दायित्व है कि वे इस दिशा में हिन्दी कोष को एक नया संसार दें।

*****